42

# चाँदनी

( एक अतीव मनोरंजक उपन्यास )



श्री ईश्वरदीन द्विवेदी

# चाँदनी

श्री ईश्वरदीन द्विवेदी

ग्रन्थ संख्या—८५

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
'९८, वि०
मू० ॥)



मुद्रक
पं० कृष्णाराम मेहता
लीडर प्रेस, इलाहाबाद

# दो शब्द

जिस समय मैं 'भारत' का सम्पादक था, उस में पंडित ईश्वरदीन द्विवेदी की कई कहानियाँ निकली थीं। कुछ कहानियाँ अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित हुई थीं। वे इस क्षेत्र में नये-नये आये थे, परन्तु उनकी कहानियों में कुछ बल था और भविष्य के लिए बड़ी आशा थी। कुछ समय बाद उनका यह 'चाँदनी' शीर्षक छोटा सा उपन्यास भी 'भारत' में प्रकाशित हुआ। इस में केवल एक कहानी ही नहीं थी, चरित्र-चित्रण की बारीकी भी थी और कथोपकथन में रस था। मुझे कहानी-लेखक तथा उपन्यासकार के रूप में उनका भविष्य बड़ा समुज्ज्वल दिखाई पड़ा। परंतु दैव के विधान को कौन जान सकता है? अभी उन्होंने युवावस्था में प्रवेश ही किया था, साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किये उन्हें चन्द साल ही बीते थे कि अकाल काल ने उन्हें दबा लिया और अपने कुटुम्बियों तथा मित्रों को रोता छोड़ कर वे इस संसार से चल बसे। उनकी कला का अभी अच्छी तरह विकास भी नहीं हो पाया था कि उनका अंतकाल आ पहुँचा। द्विवेदी जी का स्मरण कर मुझे हठात् उर्दू का वह मशहूर शेर याद आ जाता है जिसमें कवि ने बिना खिले ही मुरझा जाने वाली कलियों के भाग्य पर अफ़सोस ज़ाहिर किया

है। द्विवेदी जी से मेरा कभी साक्षात्कार नहीं हुआ। पत्र-द्वारा उन्होंने मुझ से यह चाहा था कि मैं उनके कहानी-संग्रह की भूमिका लिख दूँ। मैं ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए उन्हें किसी साहित्य-मर्मज्ञ से भूमिका लिखाने की सलाह दे दी थी। मालूम नहीं उस कहानी-संग्रह का क्या हुआ। आज ये दो शब्द लिख कर मैं उनकी स्वर्गीय आत्मा के प्रति अपनी स्नेहांजलि भेंट कर रहा हूँ।

लीडर प्रेस,
२४ जुलाई, १९४१

केशवदेव शर्मा

# चाँदनी

## प्रथम परिच्छेद

जेठ की जलती दोपहरी में बाहर से आ, बाइसिकिल दीवार के सहारे खड़ी ही की थी कि भाभी के कमरे से एक परिचित हँसी आकर कानों में घुस गई। जान-बूझ कर बाइसिकिल ज़मीन पर दे मारी। घंटी की एक धीमी आवाज़ उस अलस मध्यान्ह में फैलते ही भाभी ने बाहर सिर निकाल कर कहा, "तुम तो आ गए?"

"गाड़ी छूट गई।"

"अच्छा हुआ। तुम्हारे घर मेहमान आए हैं।

"कौन है?" कह कर मैंने ज्योंही कमरे में पैर रक्खा, चाँदनी ने दोनों हाथ जोड़, सिर नवा कर, नमस्ते किया।

मैंने कहा,—"ओहो, आप हैं! कब आई?"

चाँदनी ने माथे पर का कपड़ा ठीक करते हुए कहा, "चली ही आ रही हूँ।"

"किस ट्रेन से? मैं तो अभी स्टेशन ही पर था।"

"ट्रेन से नहीं, लारी से आई हूँ।"

कोट उतारते-उतारते मैंने कहा, "साथ में कौन आया? यहाँ तो कोई देख नहीं पड़ता।"

"साथ में कौन आता? भैया बीमार हैं। अकेली आई हूँ।"

" बड़ी हिम्मत की । "

" हिम्मत ? " चाँदनी हँस दी। बोली, " हिम्मत तो विधा
उसी दिन दे देते हैं, जिस दिन विधवा बनाते हैं। इसमें तो को
बात नहीं । "

मैंने बैठ कर कहा, " खैर, होगा। यह बताओ, तुम मु
नमस्ते क्यों करती हो ? "

" आप मेरे बहनोई के छोटे भाई, मेरे मान्य हैं, इसलिए ।

" यह तो कई बार सुन चुका । "

" फिर ? "

" मैं तुम से छोटा जो हूँ । "

" तो क्या इसीलिए मेरे पैर छूना चाहते हैं ? तो लीजिए ।

चाँदनी ने सचमुच मेरी ओर अपने दोनों पैर बढ़ा दिए
मैंने हँस कर कहा " अभी रहने दो, किसी दिन देखा जायगा ।

आँगन से मँझले दादा की आवाज़ सुनाई दी—" राजे
लौट आए क्या ? "

शायद नौकरानी ने कहा—" हाँ गाड़ी छूट गई । "

मँझले दादा के कमरे में आते ही चाँदनी माथे पर कप
खींच, पलंग के नीचे उतर बैठी। मँझले दादा ने उधर देखते ह
आश्चर्यान्वित होकर कहा, " तुम कब आईं ? "

" अभी " कह कर चाँदनी ने मेरी ओर नीची निगाह 
देख कर अपने नीचे वाले ओंठ को दाँत तले दबा लिया। 
उसके संकोच को समझ गया। बहनोई होते हुए भी वह मँझ

दादा से जो बोलने में झिझकती थी, इसकी एक वजह थी। मँझले दादा की यह तीसरी शादी थी। उनके तन और मन दोनों प्रौढ़ावस्था को पहुँच चुके थे। उनके कठोर मुख-मण्डल पर ( कम-से-कम मुझे तो यही जान पड़ता है ) हर घड़ी एक ऐसी गहरी गम्भीरता घिरी रहती थी, जिसके सामने स्वस्थ चित्त हो बातें करते बनता ही न था। चाँदनी तो ख़ैर युवती थी, मैं युवक, उनका छोटा भाई हो कर भी, शायद ही कभी सामने सिर उठा कर बातें कर सका हूँगा।

मँझले दादा कदाचित चाँदनी के संकोच को समझ गए। मेरी ओर घूम कर बोले, "किस ट्रेन से आईं हैं ये ? तुम तो स्टेशन ही पर होगे ?"

मैंने कहा, "ट्रेन से नहीं, लारी से आई हैं।"

"साथ में कौन आया ?"

"कोई नहीं।"

मँझले दादा यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। उठ कर हँसते हुए बोले, "यह काम मेरे मन का हुआ। इस तरह के दो-चार उदाहरण अगर कहने-सुनने को हो जांय, तो हमारी यात्रा-भीरु महिलाएँ बहुत कुछ निडर बनाई जा सकती हैं।"

मँझले दादा के चले जाने पर मैंने चाँदनी से कहा, "अब क्या, अब तो मँझले दादा भी तुम्हारी तारीफ़ कर गए !"

चाँदनी ने हँस कर कहा, "तारीफ़ चाहे जितनी कर गए हों, अब की बार मैं अकेली नहीं जा सकती।"

" क्यों ? "

" मेरी तबीयत । "

" फिर किसे ले जाओगी ? "

" आप को और बहिन को । "

मैंने कृत्रिम गंभीरता के साथ कहा, " भाभी तो ख़ैर सकती हैं, मगर मुझे तो बिलकुल फ़ुरसत नहीं । "

चाँदनी ने उत्तेजित हो कर कहा, " फ़ुरसत हो, चाहे न इस बार तो चलना ही पड़ेगा। तुम्हें बुलाने को कहते-क अम्मा की ज़बान और लिखते-लिखते मेरी क़लम घिस ग मगर वाह रे तुम ! तुम्हारे कानों पर जूं तक न रेंगी । न मा चौबीसों घंटे यहाँ किस रस में रमे रहते हो । "

बात पूरी करके तनिक हँस कर सहज भाव से भाभी की फिर कर चाँदनी ने कहा, " तुम ने तो लिखा था, मैं बीमार हूँ

" हूँ, नहीं ? "

" हो तो ज़रूर, मगर इस हालत में वहाँ जाना भी बेकार ही है

" क्यों ? "

" तुम्हारी इस मोटी-ताज़ी बीमारी का इलाज वहाँ भी मुमकिन नहीं । "

भाभी के साथ मैं भी हँस पड़ा । चाँदनी ने स्नेह-सिक्त मु कराहट के साथ मुझसे पूछा, " क्यों रज्जू बाबू, यह बी दिखाई पड़ती है ? "

मैंने कहा, " क्या मालूम, शायद... "

भाभी ने मुझे बीच ही में रोक कर कहा, " अगर यह न लिखती, तो तुम आतीं भला ? डेढ़-दो साल से रहते-रहते मेरी तबीयत ऊब गई थी। सोचा, तुम आओगी तो लिवा ही ले चलोगी। भैया तो जब आते हैं, कुछ कहते-सुनते ही नहीं। "

चाँदनी ने कहा, " और मैं कहती-सूनती हूँ ? मैं तो उनके सामने अच्छी तरह बोलती भी नहीं। "

भाभी ने कहा, "इससे क्या ? तुम्हारी बात सब मानते हैं ?"

" ख़ूब कहती हो ! " चाँदनी हँसने लगी। कुछ दर बाद बोली, " तुम्हारा पत्र पहुँचते ही घर भर में जैसे कुहराम मच गया। अम्मा तो रोते-रोते बेदम हो गईं। भैया भी अफ़सोस करने लगे। कहने लगे, " मैं तो बीमार हूँ। इस हवा-धूप में शायद उतनी दूर जा भी न सकूँगा। आख़िर भैया के प्रस्ताव और अम्मा के अनुमोदन करने पर मैं ही तैयार हुई। "

" तुम्हारी अम्मा और भैया ख़ूब हैं, जो तुम्हें इतनी दूर अकले भेज दिया ! " मैंने कहा।

भाभी ने हँस कर कहा, " अब बस करो, छोटे बाबू, इस तरह की बातों से तो शाम तक फ़ुरसत नहीं मिल सकती। अभी तुमने भी कुछ खाया-पिया नहीं, इन्हें भी......... "

चाँदनी ने बीच ही में कहा, " नहीं, नहीं, मेरी फ़िक्र न करो। मैं तुम्हारे घर खाने-पीने नहीं आई। "

भाभी ने उलाहने के ढंग पर कहा, " वाह ! खाओगी कैसे नहीं ? यह भी कोई बात है ? "

" बात क्यों नहीं ? तबीयत होगी, खाऊँगी, न तबीयत ह
नहीं खाऊँगी। यह भी कोई ज़बरदस्ती है ? "

" ज़बरदस्ती हो, चाहे न हो, खाना तुम्हें ज़रूर पड़ेगा
अपने घर में किसी को उपवास न करने दूँगी। "

" अगर वह करे ? "

" तो अपने घर जाय। "

चाँदनी ने हँस कर मेरी ओर मुँह फिरा कर कहा, " तो
चलो, रज्जू बाबू, मुझे पहुँचा आओ। फिर यहाँ तो मेरा
ही फ़िजूल हुआ। "

मैंने कहा, " तुम लोगों का यह गोरखधन्धा मेरी सम
बिलकुल नहीं आ रहा है। आख़िर छोटी बहिन के घर ख
हर्ज ही क्या है ? "

चाँदनी ने कहा, " हर्ज क्या है ! यह मैं शायद इस त
समझा सकूँगी। यदि विधाता तुम्हारे इस पुरुष-हृदय में
तरह स्त्री-हृदय की सुकुमार भावना का प्रादुर्भाव कर सके
समझ सकते हो। "

" ऐसे समझने से बरी रहा। एक बात बताओ। "

" पूछो। "

" तुम्हें इस घर की ही चीज़ों से परहेज़ है या
भर की से ? "

" शहर भर की से क्यों ? "

" तो ठीक। गोपाल..."

नौकर के आने पर मैंने कहा, "जाओ बाज़ार से खाना ले आओ। यह लो..."

चाँदनी ने चट मेरा हाथ पकड़ लिया—"यह क्या ? दाम अगर आप ही देंगे तो फिर इससे फ़ायदा ?"

और एक रुपया निकाल, नौकर के आगे फेंक दिया।

× × ×

भाभी का कहना ठीक ही था। चाँदनी के सिर्फ़ एक ही बार के सलज्ज अनुरोध पर मँझले दादा ने खाते-खाते सिर उठा कर कहा, "तुम जब आ गई हो, तो ले जाओगी ही, इसमें कहना-सुनना क्या है ? मगर जाओगी कैसे ? सवाल तो यह है। उधर से तुम्हारे साथ कोई सामान न था, ख़ैर वह निपट गया; मगर इधर से कुछ न कुछ सामान होगा ही। इस हालत में अकेली जा सकोगी ?"

चाँदनी ने सिर हिला कर अपनी अस्वीकृति ज़ाहिर की।

"तो फिर साथ में कौन जायगा ? मुझे तो बिलकुल फ़ुरसत नहीं।"

चाँदनी ने दम भर चुप रहने के बाद कहा, "रज्जू बाबू को भेज दीजिए।"

"हाँ, यह हो सकता है।" मँझले दादा ने मेरी ओर घूम कर कहा, "क्यों राजेन्द्र, इन लोगों को पहुँचाने जा सकोगे ?"

"चला जाऊँगा।"

मगर बाद को अपने इस आतुरतापूर्ण उत्तर के लिए म
मन में बहुत लज्जित हुआ। मँझले दादा खा कर उठ गए। चा
ने कहा, " लो, अब चलने की तैयारी करो। तुम्हारे लिए
मुझे बहुत झूठ बोलना पड़ा।"

भाभी हँस दीं। बोलीं—" वाह! झूठ क्या बोलना प
भैया बीमार नहीं ?"

" हैं तो, मगर ऐसे नहीं कि तुम्हें इस तरह खड़े-खड़े रुख
करा ले जाने की ज़रूरत होती। यह झूठ बोलना नहीं
क्या है ?"

" होगा, तुम्हें इसीलिए बुलाया ही था कि....."

" झूठ-मूठ की बातें बना कर तुम्हें लिवा ले चलें ?" च
ने हँस कर कहा। " ख़ैर, तुम्हारा तो काम बन गया। ले
अगर कहीं भेद खुल गया, तो मेरी बात जायगी।"

" यह कुछ न होगा, भेद खोलने वाला यहाँ कौन बैठा
हाँ, छोटे बाबू का डर है।"

मैंने कहा, " यह अच्छी रही! मेरे ही हाथों षड्यन्त्र
सूत्रपात हुआ, और मेरा ही डर है? मैं अगर चाहता,
तुम्हारा पत्र लेटर-बाक्स के बजाय मँझले दादा की मेज़
होता।"

भाभी ने कहा, " अगर यही सन्देह होता, तो पत्र तु
हाथ में देती ही नहीं।"

" तो फिर अब यह अविश्वास क्यों कर रही हो ?"

भाभी ने ज़ोर की हँसी हँस कर कहा, "तुम लोगों पर मैं विश्वास ही कब करती हूँ? जिनकी प्रकृति पल-पल बदलती रहती हो, उनकी बात का एतबार क्या?"

चाँदनी नज़दीक हो बैठी पान लगा रही थी। यह सुन कर बोली, "अब कहो, रज्जू बाबू! जब तुम्हारी भाभी का ही तुम पर विश्वास नहीं, तो औरों की क्या कही जाय?"

मैंने कहा, "यही तो बात है। विश्वास न होने पर भी विश्वसनीय कार्य मुझे ही सौंपे जाते हैं, और उन्हें सफलता-पूर्वक कर लाने पर भी मैं अविश्वसनीय ही समझा जाता हूँ। तुम्हीं बताओ, इस उलटवासी का क्या कारण है।"

चाँदनी ने हँस कर कहा, "यह देवर-भाभी के झगड़े का फ़ैसला मेरे मान का नहीं, इसे तुम्हीं दोनों आदमी सुलझाओ। पान लो।"

"पान मैं नहीं खाता।"

"क्यों?"

"तबीयत।"

"यह भी कोई तबीयत है? आख़िर खाते क्यों नहीं? वजह तो मालूम हो।"

भाभी ने कहा, "देखना है, आज तुम इन्हें पान खिला पाती हो या नहीं।"

मैंने कहा, "देखो भाभी, यह अच्छा नहीं। पान न खाने की मैंने क़सम थोड़े ही खाई है।"

चाँदनी ने कहा, "क़सम नहीं खाई, तो फिर क्यों नहीं ?"

"कह तो दिया, अच्छे नहीं लगते।"

"यह सब बातें हैं। या तो खाओ, या न खाने की वजह बताओ।" कह कर चाँदनी ने दो बीड़े लपेट कर ह ले लिए। भाभी के चेहरे पर अन्तस्तल की उच्छ्वसित चमक उठी।

किसी तरह भी बचाव न देख, हाथ बढ़ा कर मैंने गिलौ ले लीं और उन्हें मुँह में रख कर बोला, "लो बस, झगड़ा हो गया।"

भाभी और चाँदनी को सम्मिलित हँसी से घर का वातावरण तरंगित हो उठा।

---

## द्वितीय परिच्छेद

चादर खिंचते ही उठ कर बैठ गया। चाँदनी ने कहा, "ख़ूब सोते हो! आठ बजे की गाड़ी से चलना है, यह भूल गए क्या?"

मैंने चाँदनी के सद्यःस्नात मुख पर दृष्टि डाल कर कहा, "भूल नहीं गया। तुम नहा-धो चुकीं क्या?"

"और क्या? उठो, साढ़े छः तो बज गये।"

चटपट नित्य नियमित कार्यों से निपट कर कपड़े पहनने लगा। चाँदनी ने आकर कहा, "यह क्या? खाओगे नहीं?"

"खाऊँगा? खाने का यह कौन-सा वक़्त है?"

"सफ़र में वक़्त-बेवक़्त नहीं देखा जाता।" कह कर मेरे उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही चाँदनी ने भाभी को आवाज़ दी, "क्या करने लगीं। ले आओ।"

आवाज़ के साथ ही भाभी एक थाली में पूरी-तरकारी रख लाईं। चाँदनी ने थाली अपने हाथ में लेकर शासन के स्वर में कहा, "लो, खाओ।"

"यह तो तुम ज़बरदस्ती करती हो। भूख मुझे बिलकुल नहीं है।"

"न सही, मेरे कहने ही से खा लो।"

खाना पड़ा, मुझे भी और भाभी को भी। भाभी ख
पहले अड़ गईं। चाँदनी से बोलीं, " तुम भी अगर खाओ
मैं खा सकती हूँ; वरना नहीं।"

चाँदनी ने उपेक्षा से हँस कर कहा, " मैं ? मैं क्या
घर खाती-पीती हूँ ? रास्ते में खा लूँगी।"

" रास्ते में हम लोग भी तो खा सकते हैं। फिर हम
यह अनिच्छित भोजन पेट में ठूँस कर चलें ?"

" तुम्हारा घर है। अपने घर से कोई भूखा चलत
खाओ-खाओ, जल्दी करो। इस हैस-बैस में अगर गाड़ी
गई, और बहनोई जी ने कोई नया अड़ंगा खड़ा कर दि
फिर जाना मुश्किल ही हो जायगा।"

शायद इस बात से भाभी डर गईं। चटपट खा-पी,
हो कर बोलीं, " ताँगा तो अभी आया नहीं, छोटे बाबू। "

" ताँगा कब का दरवाज़े पर खड़ा है, तुम लोग
निकलो तो।"

चलते समय मँझले दादा ने कहा, " ज़्यादा दिन न
राजेन्द्र, जल्दी ही लौट आना। अगर कमलकुमार बाबू क
यत ठीक हो तो अपनी भाभी को भी साथ ही लिए आना
खाना-वाना बनाने में तकलीफ़ होगी।"

चाँदनी ने मुझे खोद कर हँसते हुए कहा, " कह दो,
पीने का इन्तज़ाम किसी होटल में कर लें। दो-तीन महीने
इनका आना नहीं हो सकता।"

" तो ठीक ! " मँझले दादा तनिक मुसकरा कर रह गए। ताँगा चल पड़ा।

× × × ×

गाड़ी छूटने में कुछ ही मिनट थे। चाँदनी ने कहा, " पानदान तो घर ही पर रह गया, रज्जू बाबू। "

" फिर ? ले आऊँ ? "

" लाओगे अब ? किसी पान वाले को बुला कर पान ले लो। लाने का मौक़ा अब कहाँ है ? "

पान ख़रीद, चाँदनी के हाथ में देते हुए मैंने कहा, "यह पान वान का झगड़ा इसीलिए तो मुझे पसन्द नहीं। बताओ भला, अगर यहाँ पान न मिल गए होते, तो रास्ते भर तुम्हारी क्या हालत होती ? इन छोटी-छोटी बातों में अपने को बाँध लेना मैं तो हरगिज़ पसन्द नहीं......"

बात पूरी भी न हो पाई थी कि खुली खिड़की की राह से एक युवती घबराई हुई सी अन्दर आ गई। पसीने से भरे उसके अनावृत आनन पर भय और आशंका के असंख्य भाव आ-जा रहे थे। भाभी के नज़दीक की बेंच पर एक छोटा-सा सूटकेस पटक, वह बैठ क्या गिर गई।

ट्रेन सीटी दे कर चल दी। अब जैसे युवती ने अन्तस्तल की अवरुद्ध श्वास बाहर निकाल कर हम लोगों पर दृष्टिपात किया। भाभी ने पूछा, " कहाँ जाओगी बहन ? "

युवती ने सशंकित स्वर में उसी लाइन पर के एक स्टे
नाम बता दिया। उसकी आँखों से आँसू जैसे उमड़े पड़ते

" तुम्हारे साथ में कोई नहीं, अकेली ही जा र
क्या ? " भाभी ने पुनः प्रश्न किया।

इस बार वह सकपकाई। चाँदनी ने उसके नज़दीक
कर सहानुभूति भरे स्वर में कहा, " डरो मत बहिन। बा
है ? अगर कहने में कुछ हर्ज न हो, तो बताओ। हम लो
सक तुम्हारी मदद ही करेंगे, किसी तरह का नुक़सान
चाएँगे। "

युवती इन सान्त्वनामय शब्दों से आश्वस्त होकर
" पिछले स्टेशन पर मेरे घर वाले छूट गए, मैं अके
गई हूँ। "

" कौन था तुम्हारे साथ ? "

युवती ने शरमा कर आँखें झुका लीं। कुछ जवाब न

चाँदनी ने मुसकरा कर कहा, " बड़े लापरवाह हैं
एक लावारिस पुलिन्दे की तरह गाड़ी में डाल कर खुद स्टे
रह गए। कहाँ से आ रही हो ? "

" मायके से। "

" तभी तो। ससुराल जाने की ख़ुशी में आगे-
ख़याल न रहा ? "

युवती अपनी व्यथा भूल कर मुसकरा दी। बोली,
गाड़ी में बिठा कर नल पर पानी लेने गए, इतने में ग

गई। बड़ा डर लगता है मुझे—न जाने क्या हो! इधर का रास्ता जाना-समझा भी नहीं है।"

भाभी ने पूछा, "क्या ससुराल पहले ही पहल जा रही हो?"

"पहले पहल नहीं, दो दफ़ा और जा चुकी हूँ—एक बार विवाह में, दूसरी बार गौने में। यह तीसरी बार जा रही हूँ।" कहते-कहते युवती का म्लान मुख-मंडल किसी सुखद स्मृति से प्रोद्भासित हो उठा। ललाट पर बिखरी पसीने की बूँदों को पोंछ, खिड़की के बाहर सिर निकाल कर वह किसी विगत स्वप्न में तल्लीन हो गई।

चाँदनी ने कहा, "एक ग़लती की तुमने। जिस डिब्बे में बैठी थीं, उससे चली क्यों आईं? मुमकिन है तुम्हारे पति ने तार दिया हो और स्टेशन के कर्मचारी तुम्हें उस डिब्बे में न पा कर परेशानी में पड़े हों।"

युवती का सुख-स्वप्न भंग हो गया। उसने उद्विग्न होकर कहा, "कहती तो ठीक हो, बहिन। अब क्या करूँ? मैं तो उस डिब्बे से मजबूर हो कर चली आई। वहाँ........."

युवती मेरी ओर देख कर एकाएक कहते-कहते रुक गई। चाँदनी ने कहा, "चुप क्यों हो रहीं? कहो, वहाँ क्या था?"

"वहाँ चार-पाँच बेहया, बदमाश आदमी बैठे थे। उनकी हँसी-मज़ाक और हा-हा, ही-ही के मारे बैठने ही न पाई।"

चाँदनी ने हँस कर कहा, "तुम चली ही आईं; मैं होती तो

बैठी रहती। हँसी-मजाक और हा-हा, ही-ही करके
हमारा कर ही क्या सकते थे ? "

" कुछ नहीं कर सकते थे ? " युवती आश्चर्य से
का मुँह ताकने लगी।

" कुछ नहीं। अगर हमें अपने पर पूरा भरोसा
कोई भी कुछ नहीं कर सकता। हमीं अपनी स
और अनावश्यक लज्जा से लोगों को छेड़-छाड़ करने क
देती हैं। "

स्टेशन आ गया था। गाड़ी रुकते ही चाँदनी ने मुझ
" रज्जू बाबू, पता लगाओ, इनके बारे में यहाँ कोई
नहीं आया। "

तार आया था। पूछ-ताछ करने पर तार बाबू ने
" आपकी कौन हैं ? "

" मेरी कोई नहीं, पिछले स्टेशन पर मेरे डिब्बे में
थीं। यह पूछ-ताछ मैं उन्हीं की तरफ़ से कर रहा हूँ। "

तार बाबू ने मेरे साथ आकर जब युवती से उतरने का
रोध किया, तो वह राजी न हुई। कहने लगी, " यहाँ मैं
किसी तरह भी नहीं रह सकती। "

तार बाबू बड़ा भला आदमी था। उसने कहा, " ब
डर क्यों रही हो ? यहाँ तुम्हें अकेली न रहना पड़ेगा। मे
बच्चे यहीं हैं, मैं तुम्हें वहीं रख दूँगा। दूसरी ट्रेन से ज

पति आ जायँ, चलो जाना। यहाँ तुम्हें सिर्फ तीन घण्टे ठहरना पड़ेगा।"

युवती राज़ी हो गई। चलते-चलते वह चाँदनी और भाभी से इस तरह गले मिली, जैसे बरसों की जान-पहचान हो। उस घण्टे भर के सहवास से ही उन तीनों के सुकोमल नारी-हृदय द्रवित हो, आँखों की राह बह निकले।

× × × ×

रास्ते भर युवती को लेकर ही बातचीत चलती रही। शाम के छः बजते-बजते हम लोग नियत स्थान पर पहुँच गए। स्टेशन पर उतरते ही एक सभ्य, पोशीशन और आकर्षक डील-डौल वाले व्यक्ति ने हमारा स्वागत किया। मैं देखते ही चौंक पड़ा, यह तो मँझले दादा के साले कमलकुमार हैं शायद! इन्हें आज हम लोगों के आने की ख़बर कैसे मिल गई?

कमलकुमार ने मुझे देखते ही हर्षोत्फुल्ल होकर कहा, "ओ हो, राजेन्द्र बाबू हैं! बहुत दिनों बाद कृपा की! बहिन भी आ गईं!"

मैंने आगे बढ़ कर, सामान्य शिष्टाचार-प्रदर्शन के बाद कहा, "आप की तबीयत अब कैसी है? आप तो अचानक ही मिल गए। मुझे आशा न थी कि स्टेशन पर कोई मिलेगा।"

"तबीयत तो अब अच्छी है। मुझे खुद इस बात का पता न था कि आप लोग इस ट्रेन से आ रहे हैं। मैं तो यों ही घूमता-

थामता यहाँ तक चला आया।" इसके बाद भाभी की
कर कमल कुमार ने कहा, "तुम्हारी तबीयत कैसी है ?

"अच्छी हूँ। घर में सब कुशल हैं ?"

"हाँ।"

कुली के सिर पर सामान लदवा कर वाहर आने
कमल कुमार से कहा, "कोई तांगा-वाँगा......"

"तांगा-वांगा क्या कीजिएगा ? इसी सामने वाले
घर की गाड़ी खड़ी है। आइए।"

मैंने हँसकर कहा, "जान पड़ता है, आप हम लोगों
का अनुमान करके ही घर से चले थे। तभी तो सवारी
आए।"

"सवारी आ गई, यह अच्छा ही हुआ, मगर मुझे
इस बात का पता न था कि आप लोग आ रहे हैं। मैं
घूमने-घामने आया था। हाँ, यह ज़रूर जानता था कि
जब गई है, तो किसी न किसी को लेकर ज़रूर आएगी,
नहीं आ सकती।"

चाँदनी चुपचाप पीछे-पीछे चल रही थी। यह सुन क
"इन लोगों को ले आने में मुझे कितना सच-झूठ बोल
भैया, यह तुमसे कुछ बता नहीं सकती।"

कमल कुमार ने हँस कर कहा, "तू भला सच-झूठ बो
ले तो आई, मैं तो जब कभी गया, खाली ही लौट आ

मामले में मेरी बहिन मुझसे ज़्यादा अक़्ल रखती है। क्यों राजेन्द्र बाबू ? ”

गाड़ी उस समय एक चौड़ी सड़क से गुज़र रही थी। दाहिनी ओर बने एक नए तिमंज़िले मकान को देखते-देखते मैंने कहा, “ ज़रूर। ”

चाँदनी की हँसी से ध्यान भंग हुआ। बात बदल कर बोला, “ इस मामले में आपकी और उनकी बराबरी क्या ? मुमकिन है, स्त्री होने की वजह से इनके साथ रिआयत की गई हो। ”

गाड़ी एक छोटे-से ख़ूबसूरत मकान के सामने ठहर गई। कमल कुमार बाबू अन्दर ख़बर देने गए। दो मिनट बाद एक चार-पाँच बरस का स्वस्थ, सुन्दर बालक उछलता हुआ आकर गाड़ी के पास खड़ा हो गया। पूछने पर मालूम हुआ कमल कुमार का लड़का है। भाभी ने दोनों हाथ बढ़ा, उसे गोद में उठा लिया। भोला-भाला बालक एक अपरिचित स्त्री को सविस्मय देखने लगा।

चाँदनी ने गाड़ी से नीचे उतर कर कहा, “ इन्हें पहचानता नहीं रे ? तेरी बूआ हैं, इलाहाबाद वाली। ”

बालक मंत्र-चालित पुतले की तरह बोल उठा, “ बूआ। ”

भाभी ने उसे कस कर छाती से लगा लिया, “ मेरे राजा ! मेरे लाल !! ”

इतने में अन्दर से कमल कुमार आ गए। बहिन और पुत्र का मधुर मिलन देख, मुसकरा कर बोले, “ यह शैतान यहाँ

पहले ही पहुँच गया। क्यों रे, इन सब को प्रणाम कि
नहीं ? ”

बालक अपनी भूल समझकर, चटपट बूआ की गो
रने को उद्यत हुआ। मैंने कहा, “ रहने दो। अभी प्र
बिना ही तुम्हें आशीर्वाद मिल जायगा। बड़े होने पर प्र
लेना। तुम्हारा नाम क्या है ? ”

“ मुन्ने बाबू। ”

“ वाह मास्टर मुन्ने ! ” मैंने उस भोले-भाले बालक व
पकड़ कर हिला दी। वह हँस पड़ा। ”

---

## तृतीय परिच्छेद

बाहर की बैठक में अच्छी तरह बैठ भी न पाया था कि मुन्ने बाबू ने आकर कहा—"चलो, तुम्हें बूआ बुला रही हैं।"

कमल कुमार पास ही बैठे थे। बोले—"किसे?"

बालक ने मेरी ओर अपनी नन्हीं-सी उँगली उठा कर कहा—"इन्हें।"

"इन्हें? कौन हैं यह तुम्हारे?"

"फूफा जी।"

"तो फिर कहता क्यों नहीं कि फूफा जी, चलिए आपको बूआ बुला रही हैं?" कहते-कहते कमल कुमार ख़ुद ही हँस पड़े।

बालक ने पिता के वाक्य को दोहरा दिया। कमल कुमार ने मुझसे कहा—"जाइए। मुझे भी एक दावत में जाना है दस-ग्यारह बजे तक लौट आऊँगा। आपको भी ले चलता; मगर आप रास्ते के थके हुए हैं। मिश्राजी को तो आप जानते होंगे।"

"कौन?"

"मेरे बहनोई, देवशंकर मिश्र।"

"नाम सुना है; कभी परिचित होने का मौक़ा नहीं मिला। क्या उन्हीं के यहाँ दावत है?"

"हाँ। आपको कल ले चलूँगा। अब तो कुछ दिन यहीं रहेंगे।"

"क्या करते हैं ?"

" पोस्ट मास्टर हैं।"

" अच्छा। पहले कहाँ थे ?"

" सहारनपुर।"

इसी समय एक औरत, जो रंग-ढंग से महरी मालू
थी, आकर बोली—" बाबू जी, इन भैया को अन्दर
हैं।"

" चलो, आ रहे हैं। सुनो तो।"

वह जा रही थी। लौट आई।

" घर में कह देना, हम मिश्रा जी के यहाँ जा रहे
के दस-ग्यारह बजे तक लौटेंगे।" साथ ही मेरी ओर
कमल कुमार ने कहा—"बुरा न मानिएगा। आप के सा
इसलिए नहीं चल सकता कि लाख कोशिश करने पर
दस-पन्द्रह मिनट लग ही जायँगे ( घड़ी निकाल कर ) अ
अब बिलकुल नहीं। अच्छा आप जाइए।"

मैं उठ कर चल दिया। चौखट लाँघते ही चाँदनी
के पास खड़ी मिली। हँस कर बोली—" तुम्हारी तो बा
ख़त्म होने आतीं। साले-बहनोई इतनी ही देर में ऐसे
गए !"

मैं कुछ बोला नहीं, मुसकराता हुआ चलता रहा।
बीचो-बीच एक बढ़िया-सा पलंग बिछा था; आठ-द
उसे घेरे हुए बैठी थीं। चाँदनी ने मुझे ले जाकर उसी

दिया और बैठी हुई स्त्रियों को लक्ष्य कर के कहा—" लो, अब अच्छी तरह से देख-सुन लो। अब भी अगर कोई कसर, कोई कमी बाक़ी रह गई, तो उसे तुम जानो, तुम्हारा काम जाने ; मेरा जो कुछ काम था, मैंने उसे पूरा कर दिया।"

हठात् सब की निगाहें मेरी ओर उठ गईं। एक प्रौढ़ा स्त्री ने आँखों में कृत्रिम क्रोध भर, चाँदनी को लक्ष्य कर के कहा—" बड़ी नटखट लड़की है यह ! देखना, सुनना इसमें क्या है ? लड़का तो हज़ार, दो हज़ार में एक है।"

चाँदनी ने कहा—" बस यही मैं तुम लोगों के मुँह से सुनना चाहती थी और इसी लिए इनको इतनी दूर से घसीट लाई। बाद को अगर किसी ने कहा कि लड़की की तक़दीर फूट गई, लड़का क्या है, तो मुझ से बनेगी नहीं।"

चाँदनी के बात कहने के ढंग पर सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं। अब मेरी समझ में आया कि मुझे बुलाने के लिए क्यों यहाँ से बार-बार पत्र जाते थे और चाँदनी क्यों विशेष अनुरोध कर के मुझे अपने साथ लिवा ले आई थी। सोचते-सोचते एक सरस भावना के स्पर्श से हृदय में गुदगुदी पैदा हो गई और मन जैसे किसी अज्ञात, अचिन्त्य विचार-प्रवाह में बहने को उतावला हो उठा। चाँदनी ने कहा—" क्या सोच रहे हो जी ? यह सब तुम्हें देखने, पसन्द करने आई हैं ; तुम चुपचाप बैठे हो। तुम भी इनमें से किसी को पसन्द करो। आँखें उठा कर देखो तो।"

कहने पर आँखें उठाईं ज़रूर ; किन्तु उस नारी-मंडल को

देखने के बजाय पलंग के नज़दीक खड़ी चाँदनी को दे
रह गया। मेरे इस असंगत व्यवहार से सभी स्त्रियाँ
पड़ीं। एक ने चाँदनी को लक्ष्य कर के कहा—" अब
तो हम लोगों की बनिस्बत तुम्हीं को ज्यादा पसन्द क
इधर तो आँख उठा कर भी नहीं देखा।"

चाँदनी ने असंकुचित भाव से कहा—" मुझे पसन्द
हैं, यह अच्छा ही कर रहे हैं। मगर मैं तो उन्हीं की
मुझे अगर पसन्द-नापसन्द न भी करें, तो कोई ब
लेकिन अगर तुम में से किसी को पसन्द करें, तो एक
बाहरी चीज़ मिल सकती है। "

इस तरह की बातों का सिलसिला शायद चलता ह
किन्तु उसी समय चाँदनी की माँ पुरखिन मैया आ
आते ही बोलीं—"तुम लोग ख़ाली बकवाद ही करोगे
को कुछ खिलाओ-पिलाओगी भी ? "

एक स्त्री ने कहा—" खाने-पीने का सामान तो स
रक्खा है ; जब खाते नहीं, तो हम लोग क्या करें ? क्यों
क्यों नहीं ? मुफ़्त में हम लोगों को बदनाम कर रहे हो।

" खा लूँगा, जल्दी है ? " मैंने कहा।

"देखा ? कहने पर कहते हैं ' खा लूँगा। ' और तु
हो ' खिलाती-पिलाती नहीं '। आख़िर तुम्हीं कह कर दे

पुरखिन मैया ने हँस कर कहा—" बेचारे लड़के
तो करो नहीं। तुम लोगों के पास इसके सिवा काम

है ? वह बेचारा बोलता नहीं, तुम लोग उसे बार-बार छेड़ रही हो। बिटिया चाँदनी, जा पानी ले आ, तू भी खड़ी-खड़ी सब की बातें सुन रही है ! बेचारे लड़के की भूख-प्यास का किसी को खयाल नहीं।"

चाँदनी ने जाते-जाते कहा—"क्यों अम्माँ ! तुम इन्हें लड़का क्यों कहती हो ? भला इतनी उम्र के भी कहीं लड़के होते हैं ?"

सभी स्त्रियाँ हँस पड़ीं। पुरखिन मैया ने भी उस हँसी में योग देकर कहा—" जा-जा पानी ले आ, चौबीस-पचीस साल के लड़के नहीं तो क्या बूढ़े होते हैं ? अपना लड़का चाहे जितना बड़ा हो जाय, अपनी निगाह में वह छोटा-सा बच्चा ही रहता है।"

चाँदनी पानी ले आई। उतनी निगाहों के बीच कुछ खाते हुए संकोच तो बड़ा लग रहा था ; मगर करता क्या ? कुछ कहते-सुनते भी न बनता था। चाँदनी ने हाथ धुला दिए। जेब टटोली, रूमाल न था। चाँदनी ने मेरे असमंजस को ताड़ कर अपनी धोती का अंचल बढ़ा दिया। मैंने कहा—" यह क्या ?"

" कपड़ा है। हाथ पोंछ लो। और तो कुछ इस जगह देख नहीं पड़ता।"

पुरखिन मैया चली गई थीं। चाँदनी के इस कृत्य को लक्ष्य कर एक युवती ने कहा—" तुम तो इन्हें बिलकुल अपना ही बनाए लेती हो। देखो, यह ठीक नहीं।"

चाँदनी ने मेरी ओर जलपान की तश्तरी बढ़ा कर मृदु कंठ

से कहा—"मेरे तो हैं ही, इसमें कहना-सुनना क्या है
तुम क्यों जली मरती हो, यह बताओ।"

युवती कुछ जवाब न दे, मुसकरा कर रह गई।

सन्ध्या का धुँधला अंधकार क्रमशः गाढ़ा होता जा
दिया-बत्ती करने का समय जान, सभी स्त्रियाँ उठ कर

सुनसान हो जाने पर चाँदनी से पूछा—"यह
आई थीं ?"

"तुम्हें देखने।"

"तुम तो मज़ाक कर रही हो। सच बताओ।"

"सच कहती हूँ। मुन्ने का आज जन्म-दिन था, उ
लोग आई थीं। जा रही थीं कि मैं आ गई। मेरे कह
तुम्हें देखने को ठहर गईं।"

भीतरी आँगन से पुकार हुई—"बिटिया चाँदनी !

"अम्मा बुला रही हैं। अभी आती हूँ।" कह क
चली गई। मैं चुपचाप बिछौने पर लेट कर विभिन्न वि
में बहने लगा। याद आया, भाभी ने एक दिन कहा
बाबू, अगर तुम्हारी शादी राजरानी ( भाभी की छोट
के साथ हो जाती, तो बड़ा अच्छा होता। तुम रा
राजरानी ! जोड़ा तो बना-बनाया रक्खा है ! तुम्हा
क्या है ?"

मेरे मन में जो कुछ था, उसे छिपा कर मैंने
"मेरे मन में क्या है ? कुछ नहीं। एक तो बी० ए०

बिना इन बातों में मैं पड़ना नहीं चाहता, दूसरे इस सम्बन्ध की कुल ज़िम्मेदारी मँझले दादा पर है, अतः इन बातों को वही जानें। मैं कुछ नहीं कह सकता।"

भाभी मेरी इस बात से हँस कर कहने लगी थीं—"तुम दोनों भाइयों की माया समझ में नहीं आती। उनसे कहने पर जवाब मिलता है—राजेन्द्र से पूछो। तुम कहते हो—मँझले दादा जानें। खैर, किसी दिन मौक़ा पड़ने पर अगर तुम्हें राज़ी कर सकी, तो तुम्हारे मँझले दादा तो राज़ी हुए ही बैठे हैं। वे तो तुम्हारे ही राज़ी होने की राह देख रहे हैं।"

सोचते-सोचते मुझे हँसी आ गई—तो क्या आज ही वह मौक़ा है ? पैरों की आहट से चौंक कर सिर उठाया—भाभी आ रही थीं। नज़दीक आने पर बोलीं—"चुपचाप पड़े क्या कर रहे हो ?"

"कुछ नहीं। चाँदनी क्या करने लगीं।"

"खाना बना रही हैं।"

"वही बना रही हैं, क्या और कोई बनाने वाला नहीं है ?"

"और कौन है ? अम्मा रात को खाना-वाना बनातीं नहीं, भाभी की तबीयत ख़राब है। रह गई राजरानी, वह भला अब क्यों तुम्हारे सामने रसाई-घर में घुसने लगी ?"

कह कर भाभी हँसने लगीं। ज़रा देर बाद बोलीं—"अब तो सब ठीक-ठीक हो गया ? अब तो तुम्हारी नाहीं-नूहीं को गुंजाइश रही नहीं ?"

" रही क्यों नहीं ? " हाथ में पान की गिलौरियाँ
चाँदनी ने कहा—" अभी तो हमीं लोगों ने इन्हें देखा
तो किसी को देखा नहीं। फिर देखे-समझे बिना कैसे
लें ? मैं तो चाहती हूँ, विवाह होने के पहले स्त्री-पुरुष
को अच्छी तरह से देख-सुन लिया करें, जिससे फि
किसी तरह का झंझट-बखेड़ा न रह जाय। "

भाभी ने कहा—" मगर यह तो कहते हैं, बी० ए०
बिना मैं इस झगड़े में पड़ना नहीं चाहता। "

चाँदनी हँस दी। बोली—" ठीक कहते हैं। मग
पास करने में अब कसर ही कितनी रह गई है ? इम्ति
आए, रिज़ल्ट ही निकलना बाक़ी रहा है, सो वह कोई
विवाह हो जायगा। अगर पास हुए, तो बीबी पास र
हुए तो अलग—अपने मायके में। इनकी पढ़ाई में किसी
ख़लल न पड़ने पाएगा, इसकी ज़िम्मेदारी मैं अ
लेती हूँ। "

बाहर से किसी ने आवाज़ दी—" बाबू जी ! "

"इतनी रात को कौन आया ? " कह कर चाँदनी
के पास जाकर पूछा—" कहाँ से आए हो ? "

" मिश्रा जी ने भेजा है। "

" क्यों ? "

" आपके यहाँ वह जो बाबू साहब आए हैं, उन्हें
लिए। चिट्ठी लाया हूँ। "

चाँदनी ने किवाड़े खोल कर ख़त ले लिया और मेरे पास आकर कहा—" तुम्हें जीजा जी ने बुलाया है। यह लो।"

हाथ बढ़ा कर लिफ़ाफ़ा ले लिया। फाड़ कर देखा तो निमंत्रण-पत्र था। नीचे की ख़ाली जगह में पेंसिल से घोर घसीट में लिखा था—" आप ही के इन्तज़ार में हम लोग बैठे हैं और कुल काम रुका हुआ है। मैं स्वयं आता; किन्तु अतिथि-अभ्यागतों के स्वागत-सत्कार में व्यस्त रहने के कारण असमर्थ हूँ। आशा है, आप अवश्य कृपा करेंगे।

भवदीय
देवशंकर मिश्र।"

पत्र पढ़कर चाँदनी से कहा—" जाऊँ फिर ? "

" जाओगे ? " चाँदनी ने रुकते हुए कहा, " रात ज्यादा जा चुकी। खाना भी तैयार रक्खा है। लौटोगे कब ? "

" यह अभी से क्या बता सकता हूँ ? मिश्रा जी ने अगर आने दिया तो कमल बाबू के साथ ही लौट आऊँगा।"

कपड़े पहन कर चल दिया। पहुँचने पर देखा, सचमुच मेरा ही इन्तज़ार हो रहा है। मेज़ों पर खाद्य-सामग्री चुन दी गई थी; किन्तु मेहमान लोग कुर्सियों पर बैठे जमुहाइयाँ ले रहे थे, किसी ने उसमें हाथ तक नहीं लगाया था।

मिश्रा जी ने मुझसे बड़े तपाक से हाथ मिला कर कहा— " वाह राजेन्द्र बाबू, आप तो ख़ूब आ गए! इसके लिए मेरा

बहुत-बहुत धन्यवाद लीजिए। मुझे तो मालूम भी न होत
कमल बाबू न बताते। आप तो धोखे ही धोखे में छूटे ज
तशरीफ़ रखिए।'

मेरे बैठते ही दावत का रुका हुआ कार्यक्रम चल प

—

## चतुर्थ परिच्छेद

दावत समाप्त हो जाने पर मिश्रा जी के पास जाकर मैंने कहा—"तो मुझे भी अब आज्ञा है न ?"

मिश्रा जी उस समय अभ्यागतों को बिदा करने में लगे थे। मेरी ओर मुड़ कर मुसकराते हुए बोले—"इन सब को जा लेने दीजिए, आपको भी आज्ञा होगी। जल्दी क्यों कर रहे हैं ?"

लौट कर पुनः अपनी जगह पर आ बैठा। मुझे बैठते देख कर कमल कुमार ने कहा—"मैं तो अब चल रहा हूँ। आप मिश्रा जी से मिल-मिला कर आइएगा।"

"मैं भी चल रहा हूँ, ज़रा देर ठहर जाइए।"

"फ़ायदा क्या ? आज आप किसी तरह भी न जाने पायेंगे।"

"क्यों ?"

"पहले-पहल की मुलाक़ात है, मिश्रा जी इस आसानी से छोड़ देने वाले आदमी नहीं हैं। कम-से-कम रात भर तो आपको ठहरना ही पड़ेगा।"

कह कर कमल कुमार चले गए, मैं उसी जगह बैठा रह गया। क़रीब आध घंटे बाद मिश्रा जी ने अपने काम से फ़ुरसत पा, आकर कहा—"चलिए।"

कुछ पूछ-ताछ किए बिना मैं उनके पीछे-पीछे चल
घर में पहुँच कर मिश्रा जी ने आवाज़ दी—" मेम साहबा

मैं चौंक पड़ा; किन्तु तत्क्षण ही अपने सामने भारती
भूषा से सुसज्जित एक हिन्दू महिला को देख कर मुस
दिया। मिश्रा जी ने मेरे इस भाव-विमर्ष को ताड़ कर
" आप हँसे क्यों ? "

" आप इन्हें मेम साहबा क्यों कहते हैं ? "

" यह इन्हीं से पूछो। क्यों जी, अपने नामकरण का
बताओ न। "

वह बेचारी अपने सामने एक अपरिचित को पाकर
सिमटी जा रही थीं, जवाब कौन देता ? मिश्रा जी ने
" पहचानती नहीं हो इन्हें ? पार्वती के देवर हैं। "

अब जैसे उस लज्जाशीला महिला की आँखें ऊपर उठ
प्रसन्न मुख-मुद्रा से मुझसे कहा—" बैठिए, बड़ी कृप
कब आये ? "

मैं इस सुसभ्य बातचीत से बहुत प्रभावित हुआ। मि
खड़े ही रहे, मैंने बैठ कर कहा—" आज ही। "

" घर में सब कुशल है ? "

" जी हाँ। "

" बहन भी आई हैं ? "

" हाँ " मैंने सिर हिला दिया।

" मैंने तो सुना था, बीमार हैं। "

मैंने हँसी रोक कर कहा—"थीं तो; मगर अब अच्छी हैं।"

"अब चाहे दो-एक महीना रहें, कई बरस बाद आई हैं।"

"इतने दिन तो रहना हो नहीं सकता, सप्ताह-दो सप्ताह ले ही रह लें। घर में भी तो कोई नहीं।"

"कोई नहीं? बहनोई जी कहाँ गए?"

"बस वही हैं। मगर अकेले वे क्या-क्या करेंगे? दफ़्तर ायेंगे या घर की रखवाली करेंगे?"

मिश्रा जी शायद खड़े-खड़े ऊब रहे थे। पत्नी से बोले— अच्छा, अब जो पूछना बाक़ी रह गया हो, उसे कल सबेरे के ए रख छोड़ो। तुम में यही तो बुरी बात है कि बोलती नहीं हो नहीं बोलती, बोलने लगती हो, तो पिंड छुड़ाना मुश्किल कर ी हो। दो तो बज गए, सोने का इन्तज़ाम कहीं करोगी नहीं?"

"सोने का भी इन्तज़ाम होगा, तनिक ठहर जाओ। यह क्या ज़-रोज़ आते हैं!"

"रोज़-रोज़ नहीं आते, क्या इसीलिए रात भर जगा कर मार कर डालना चाहती हो? सज़ा तो अच्छी है। ख़ैर राजेन्द्र बू, आप इसे भुगतिए, मैं तो चला।"

कह कर मिश्रा जी सीढ़ियों की ओर बढ़ चले। पत्नी ने कहा -"ठहरो, अभी वहाँ जाकर क्या करोगे? अभी तो वहाँ छौने भी नहीं गए।"

मिश्रा जी ने सीढ़ी पर रक्खे पैर को नीचे उतार कर कहा—

" तो फिर ले जाओ। दो पलंग हैं, दोनों बिछा देना। ए
हम और दूसरे पर राजेन्द्र बाबू सोवेंगे। तुम कहाँ सोओगी

" घर में क्या कहीं जगह नहीं है? मैं नीचे आँगन
रहूँगी।"

मेम साहबा जब बिछौने लेकर चलने लगीं तो, मुझसे
गया। मैंने कहा—" आप यह तकलीफ़ क्यों कर रही हैं?
नौकर-चाकर को भेज दीजिए। आपसे बिछौना बिछव
लेटते मुझे तो बड़ा वैसा लगेगा।"

मेरी बात सुन कर मेम साहबा तो कुछ बोलीं नहीं; मि
हँस दिए। बोले—" चाहे जैसा लगे, मगर यह अपने क
छोड़ नहीं सकतीं। मैं तो कहते-कहते हार गया; मगर इस
को नौकरों से कराना इन्हें पसन्द ही नहीं। इसे यह अपने प्र
कामों में शुमार करती हैं।

हँस देने के सिवा उपाय ही क्या था? मेम साहबा
लेकर छत पर चली गईं और पाँच-सात मिनट बाद नीचे
बोलीं—" जाइए, सब ठीक हो गया।"

मिश्रा जी के पीछे-पीछे मैं भी सीढ़ियों पर चढ़ चला।

छत पर पहुँच, बिछौने पर लेटते ही मेम साहबा दो गि
में दूध लिए आ पहुँचीं। मेरे पलंग के पास आकर बो
" लीजिए, उठिए।"

मैंने बैठ कर कहा—"सोने के पहले कुछ खाने-पीने की
आदत नहीं, इसलिए मुझे तो माफ़ हो......"

बात पूरी न होते-होते मिश्रा जी ने बीच ही में अपने स्वाभा-
क जोश के साथ कहा—" अजी लीजिए भी ! आप तो मुझे
ुत संकोची आदमी मालूम पड़ते हैं। आदत नहीं, तो क्या
भा ? यह क्या कोई नुक़सान वाली चीज़ है ? "

" खैर लाइए। " हँस कर गिलास की तरफ़ हाथ बढ़ाते
दूध पर निगाह पड़ी—" अरे इतना नहीं, बहुत है। थोड़ा
काल......"

मिश्रा जी पुनः बड़बड़ाए—" फिर वही। यही तो मुझे
च्छा नहीं लगता। जैसा मैं बेतकल्लुफ़ हूँ, वैसा ही अपने
पर्क में आने वाले हर छोटे-बड़े को देखना चाहता हूँ। आपको
। दूध पीना पड़ेगा, एक बूँद भी इधर-उधर किए बग़ैर।
ँस कर ) कुछ दिनों अगर आप मेरे साथ रह जायँ, तो
नकी यह सारी संकोचशीलता और कुल तकल्लुफ़ी दूर कर
पका ऐसा कायाकल्प कर दूँ कि जिसका नाम नहीं। "

मन में आया, कहूँ, फिर आप अपनी पत्नी का कायापलट
नहीं कर सके ? वह तो किसी अपरिचित को देखते ही
ा से सिमट कर छुई-मुई हो जाती हैं। मगर मुझे कहना न
, मिश्रा जी खुद ही बोले—" आप सोचते होंगे, अगर यह
है तो फिर मेरी स्त्री .. खैर दूध पी लीजिए, तब बातें हों। "

दूध के दोनों खाली गिलास लिए मेम साहबा जब नीचे उतर
तो मिश्रा जी कहने लगे—" हाँ, तो आप मन-ही-मन कहते
ं कि अगर यह बात है, तो फिर मेरी स्त्री ऐसी लज्जालु क्यों

है ? उसमें मैं किसी बाहरी आदमी के सामने सिर उठा कर
करने का साहस क्यों नहीं भर सका ? हः हः हः हः, है न
बात ? सच कहिएगा । ”

धीरे से तकिए पर सिर रख कर मैंने कहा—“ सचमुच
हृदय में यही बिचार उठा था । आपकी बातें तो रोमाँटिक क
जैसी आकर्षक जान पड़ती हैं । ”

मिश्रा जी ने हँस कर कहा—“ रोमांस मेरे रोम-रोम स
हैं, फिर मेरी बातें रोमांटिक क्यों न होंगी ? हाँ तो क्या कह
था मैं ? अपनी स्त्री की बात ? सच तो यह है राजेन्द्र बा
किसी भी तरह की शिक्षा के लिए योग्य पात्र की जरूरत
है । वह न हुआ, तो बढ़िया-से-बढ़िया शिक्षक भी कुछ नहीं
सकता । मेरी पत्नी पर ठीक यही सिद्धान्त लागू होता है ।
किसी भी बात को, वह चाहे जितने सरल ढंग से कही जाय
हृदयंगम नहीं कर पाती, और इसीलिए जो कुछ मैं उसे ब
चाहता हूँ, बन नहीं पाती । ”

“आप उन्हें मेम साहब बनाना चाहते हैं, कैसे बन पायेंग

मिश्रा जी मुसकरा पड़े । बोले—“ मेम साहबा बनाने क
मैंने कभी कोशिश की, न कर सकता हूँ । पाश्चात्य सभ्यत
यह पहलू ही मुझे पसन्द नहीं । हाँ, यह जरूर है कि भरती
का हिमायती होते हुए भी मैं उसमें कतिपय सुधार चाहता
उन्हीं सुधारों में से एक भारतीय महिलाओं की अनावश्यक त
और झिझक दूर कर उनमें अंग्रेज रमणियों की सी आँ

न्दता का समावेश करना है। मेरे इस आदर्श के अनुकूल
भी तक एक ही स्त्री बन सकी है।"

"कौन ?"

"मेरी साली चाँदनी।"

अकस्मात किसी सोते हुए व्यक्ति के मुँह पर थप्पड़ मार देने जिस तरह वह हड़बड़ा कर उठ बैठता है, मेरा असल अन्तः- ण मिश्रा जी की इस बात से उसी प्रकार चौंक कर सहज हो । पूछा—"आपको उन्हें अपने साँचे में ढालने का मौक़ा हाँ मिला ?"

मिश्रा जी ने बड़ी देर से मुँह रक्खे पान को थूक कर कहा— मौक़ा मुझे बहुत मिला। विधवा होने के बाद तीन-चार बरस तो मेरे ही यहाँ रहीं, अब दो-एक साल से अपने यहाँ—मायके रहने लगी है। पढ़ाया लिखाया तो मैंने ही है।"

"पहले क्या एक दम निरक्षर थीं ?"

"निरक्षर न थीं सही; मगर वह शिक्षा अक्षर-परिचय से ही आगे बढ़ सकी थी। अब तो काफ़ी कल्चर्ड हो गई है। नसे तो बातचीत हुई होगी।"

"हुई थी।"

कहने को तो कह दिया; मगर तबीयत होने लगी कि मिश्रा जी यह बातचीत बन्द कर दें, तो अच्छा। न जाने क्यों उनकी तों में अब रोचकता के बजाय मुझे एक तरह की जलन मिलने

लगी। चाँदनी विषयक दो चार बातें पूछने के बाद मिश्रा
कहा—" नींद लगने लगी क्या ? "

मैंने जमुहाई लेते हुए कहा—" नींद अब क्या लगेगी ?
होने में तो अब ज्यादा देर न होगी ? "

उसी समय नज़दीक के घंटाघर में चार बजे। मिश्रा
कहा—" अभी तो दो-ढ़ाई घंटे रात है। आप मजे में सो
हैं, मगर मैं तो अपने सोने का समय बिता चुका। "

" आप कै बजे सोकर उठते हैं ? "

" पांच बजे के पहले-पहले, छः बजते बजते अपने दै
कार्यों से निपट कर हवाखोरी को चल देता हूँ। अब अगर
सोना भी चाहूँ, तो नींद नहीं आ सकती। "

" हम लोगों से आप ही अच्छे ! तभी तो आप का स्वा
इतना बढ़िया है। खैर, मुझे माफ़ कीजिएगा। "

कह कर करवट बदल, आँखें बन्द कर लीं। मगर नींद क
मस्तिष्क में विचारों का एक छोटा-मोटा तूफ़ान दौड़ रहा था।

× × ×

सबेरे की धूप मुँह पर पड़ते ही आँखें खुल गईं। अँग
लेकर उठ बैठते ही मिश्रा जी के पलंग पर निगाह गई
खाली पड़ा था। चटपट कपड़े ठीक-ठाक कर नीचे उत
मेम साहबा ने देखते ही हँस कर कहा—" खूब सोए !
एक बार देख कर लौट आई, जगाया नहीं—यह समझ कर
जब नींद पूरी हो जायगी, आप ही उठोगे। "...

पन्द्रह मिनट बाद नित्य नियमित कामों से फ़ुरसत पाकर मेम
हब से कहा—" मिश्रा जी तो पोस्ट ऑफ़िस में होंगे ? "

" हाँ। "

अच्छा तो अब मैं चल रहा हूँ। "

मेम साहबा ने उठते हुए कहा—" चल कहाँ रहे हो ? कह
ए हैं, आज जाने न देना। खड़े क्यों हो ? बैठ जाओ। "
ठते ही एक तश्तरी में मेम साहबा जलपान का सामान ले
ाईं। देख कर मैंने कहा—" यह सब क्या होगा ? "

मेम साहब ने कहा—" खाया जायगा और क्या होगा ? "

" खाया तो तब जायगा, जब पेट में इतनी जगह होगी।
त को जो कुछ खाया था, वह अच्छी तरह सो न सकने से
ज़म भी न हो पाया कि उससे ड्योढ़ा दूना तुमने और लाकर
ख दिया। क्या सचमुच मुझे बीमार कर डालने का इरादा है ?"

मेम साहबा हँसते-हँसते लोट गईं। बोलीं—" तुम्हारी बातें
क्या होती हैं ! ख़ैर, जितना खा सको, खाओ; बाक़ी पड़ा
ने दो। "

" पड़ा रह कर क्या होगा ? अभी निकाल लो। बाद को
राब ही तो जायगा।"

"ख़राब क्यों जायगा, क्या कोई खाने वाला नहीं ? "

अन्त में मुझे ही परास्त होना पड़ा। खा-पी कर मैंने कहा—
अच्छा तो अब इजाज़त दीजिए, शाम को फिर आऊँगा।
श्रा जी अपने काम में लगे हैं, मैं यहाँ बैठा-बैठा क्या करूँगा ?"

मेम साहबा ने कहा—" और वहीं क्या कर लोगे ? मैं
समझती हूँ, खा-पी कर जाते।"

" खा-पी तो चुका, अभी कुछ कसर है ? "

" क़सर क्यों नहीं ? जलपान की चीज़ों को मैं खाने-पी
नहीं शुमार करती।"

" ख़ैर न सही, मगर आज तो मुझे माफ़ हो करना हो
आज मैंने पेट पर ज़रूरत से ज्यादा जुल्म किया है, इस
दोपहर के इधर कुछ खा-पी सकने में असमर्थ हूँ। अच
नमस्ते।"

बाहर निकलते ही मिश्रा जी ने पोस्ट आॅफ़िस की खिड़की
सिर निकाल कर कहा—" आप तो चल दिए ! "

" और बैठे-बैठे क्या करूँ ? आप तो अपने काम में मश
हैं। शाम तक फिर आऊँगा।"

" खाना-वाना खा चुके ? "

" खाना-वाना ? " मैंने हँस कर कहा—" अभी आठ
नहीं, खाना-वाना कैसे खा चुका ? आप दोनों के फेर में अ
कोई मन्दाग्नि वाला आदमी पड़ जाय, तो बीमार हो कर ही
जाय। कुछ खाने-पीने की इच्छा न रहते भी मेम साहबा
जलपान की चीज़ें ज़बरदस्ती पेट में ठूँस ही दीं।"

मिश्रा जी हँसने लगे। मैंने अपनी राह ली। कुछ ही दूर च
था कि सामने से कमल कुमार आते दिखाई दिए। मुझे देखते

ंस कर बोले—" कहिए, छुटकारा मिल गया ? मैंने समझा था, ाायद आज न आ सकोगे । "

मैंने कहा—" आने तो सचमुच नहीं दे रहे थे; मैं ही चला ाया । कहाँ जा रहे हैं आप ? "

" स्टेशन । "

" क्यों ? "

" एक आदमी से मिलना है । "

" मैं भी चलूँ । "

" आप जा कर क्या कीजिएगा ? घर चलिए । मैं अभी आ रहा हूँ । "

कह कर कमल कुमार स्टेशन की तरफ़ और मैं घर की ओर चल दिया ।

---

# पाँचवां परिच्छेद

घर के द्वार पर पहुँच कर ठिठक गया। भीतर मेरे ही सं
की चर्चा चल रही थी। चाँदनी कह रही थी—" इस घर में
दे कर यही एक पंडित रह गए हैं। हर काम, हर बात में उ
की बात ब्रह्म-वाक्य मान ली जाती है। अब क्या मालूम उ
कुछ ग़लती हो ही गई हो, इस हालत में किसी दूसरे पंडित
कुण्डली दिखा देने में हर्ज क्या है ? "

पुरखिन मैया ने कहा—" हर्ज कुछ नहीं। बात यह है
वह घर के पुराने पुरोहित हैं, इसलिए इन कामों की पूछ-ता
उन्हीं से ठीक है। किसी दूसरे से पूछने पर अगर कुछ ऊँच-नी
हो जाय, तो ज़िन्दगी भर को कहने को हो जायगा। "

चाँदनी ने कहा—" तुम्हारी बातें भी ख़ूब होती हैं अम्म
ऊँच-नीच अगर होने को होगा, तो क्या उसे अपने पुरोहित रो
रक्खेंगे ? वह तो होकर ही रहेगा। मेरी शादी तो घर के पुरोहि
से पूछ-ताछ कर हुई थी, फिर उसमें ऊँच-नीच क्यों हुआ ? "

" यह तो तक़दीर की बात है। "

चाँदनी ने हँस कर कहा—" तो फिर कुण्डली-चक्र की भूल
भुलैया में एक अच्छा घर-वर क्यों खोए दे रही हो ? बुरा
मानना अम्मा, मैं तुमसे बहस नहीं कर रही। मगर समझ लो
ऐसा घर-वर बारबार मिलने वाला नहीं। "

पुरखिन मैया ने कहा—“ यह तो मैं भी जानती हूँ। मगर
ब कुण्डली नहीं मिल रही, तो क्या किया जाय ? ”

चाँदनी ने कहा—“ वही कह तो रही हूँ, किसी दूसरे पंडित
ा दिखाई जाय ; क्या मालूम मिल ही जाय ? ”

“ यही करो फिर। तुम्हीं दोनों ने इस सम्बन्ध को लगाया,
ब तुम्हीं दोनों इस गुत्थी को सुलझाओ। ”

भाभी ने कहा—“ भैया स्टेशन से आ जायँ, तब किसी
डित को बुला कर कुण्डली दिखाई जाय। उनकी भी यही
य थी। ”

पुरखिन मैया हँस दी। बोली—“ तो फिर जब तुम लोगों ने
ापस में सलाह करके सब ठीक-ठाक कर लिया है, तो मुझे
च में डाल कर क्यों घसीट रही हो। ”

“ बाबू जी आप यहाँ खड़े...... ”

घूम कर देखा, घर का कहार कंधे पर एक भाजी का गट्ठर
खे मेरे खड़े होने पर आश्चर्य प्रकट कर रहा है। मन ही मन
क दुर्निवार लज्जा का अनुभव कर, चौखट लाँघ गया।

मेरे आँगन में पहुँचते ही वह अंतरंग सभा इधर-उधर हो
। एक नवयुवती मेरी ओर मुँह फिरा कर देखते ही साड़ी की
ों में सिमटती हुई कमरे के अन्दर हो रही। चाँदनी और भाभी
ह में कपड़ा लगा कर हँसने लगीं।

चाँदनी ने मुझे बैठने का संकेत कर कहा—“ तुम्हारी बात

का कोई एतबार नहीं, रात ही को आने को कह कर अब
रहे हो।"

मैंने बैठ कर कहा—"यही ग़नीमत समझो, वरना शा
पहले आ सकने की उम्मीद ही न थी।"

भाभी ने हँस कर कहा—"यह तो जीजा जी की पु
आदत है, मेहमान को अपनी इच्छा पर जाने देना तो वे ज
ही नहीं। मेरे बारे में भी कुछ पूछ रहे थे?"

"मेम साहबा तुम्हारी बीमारी की बाबत पूछ रही थीं।

"फिर?"

"मैंने कह दिया, अब तो अच्छी हैं।"

चाँदनी ने हँस कर कहा—"ख़ूब किया। झूठी बातें
मुहर लगाना तुम्हें भी ख़ूब आता है।"

पुरखिन मैया चुपचाप बैठी थीं। यह सुन, हँस कर बोल
"तुम हर घड़ी बेचारे लड़के के नाक में दम किए रहती
इसी से तो वह तुम सब से भागा-भागा फिरा करता है।"

चाँदनी ने मुँह फिरा, हँसी रोक कर कहा—"भागे-
फिरते हैं, इसी से तो इनके लिए एक जाल की तैयारी हो
है। अब देखूँगी, कहाँ, कैसे भागते हैं।"

पुरखिन मैया उठ कर चल दीं। किन्तु जाने के पहले चाँ
की तरफ़ इशारा कर कहती गईं—"मेरी लड़कियों में यह स
बातूनी, सब से नटखट है। इसकी बातों का ख़याल न क
भैया, यह तुम्हें परेशान करती है।"

पुरखिन मैया के चले जाने के बाद चाँदनी ने कहा—
" जानते हो, अम्मा यह सब क्यों कह गईं ? "

मैंने सिर हिला कर कहा—" मुझे क्या मालूम ? बताओ ?"

" यह कह गई हैं, तुम्हारी नाराज़ी दूर करने के लिए। "

—" कैसी नाराज़ी ? "

" तुम जो हम लोगों की हँसी-मज़ाक में शामिल नहीं होते, चुप ही बैठे रहते हो, इसकी वजह अम्मा यह समझती हैं कि तुम इन बातों से नाराज़ हो जाते हो। देखो, तुम्हारा कितना ख़याल रखती हैं ! "

इतने में कमल कुमार आ गए। आते ही बोले—" रास्ते में आपके साथ की वे बातें मुझे व्यर्थ ही स्टेशन तक फिरा लाईं। "

" क्यों ? "

" स्टेशन पर पहुँचने के पहले ही ट्रेन मिस हो गई। "

मैंने हँस कर कहा—" बातें चूँकि आप ही ने शुरू की थीं, इससे ट्रेन छुड़ाने के आप ही ज़िम्मेदार हो सकते हैं, मैं नहीं। "

" ख़ैर, मैं ही सही। " कमल कुमार बाहर चले गए। चाँदनी ने कहा—" अच्छा अब उठो, नहाओ-धोओ। मैं भी खाना बनाने जा रही हूँ। "

मैंने कहा—" नहा-धो सकता हूँ ; मगर खाना तो दोपहर के पार किसी तरह भी नहीं खा सकूँगा। खा लूँगा, तो चारपाई पर पड़ने की नौबत आ जायगी। "

चाँदनी ने हँस कर कहा—"नई साली ने ऐसी ज़बर
ख़ातिरदारी कर दी! ख़ैर, खाना न सही, कुछ और ही......

"कुछ भी नहीं, पेट में पानी तक की गुंजाइश नहीं है।
भर का जगा हूँ, इसलिए खाने से सोना इस समय मुझे ज़
ज़रूरी जान पड़ता है।"

मेरी उनींदी आँखों पर दृष्टि डाल कर चाँदनी मेरे सा
उठ पड़ी और कमरे में आ, बिस्तर ठीक कर बोली—"
नहाओगे या सोने के बाद?"

मैंने लेट कर कहा—"अब तो सोने के बाद ही नहा
इस समय तो अब मुझसे कुछ नहीं हो सकता।"

"यह तो मैं जानती थी। ख़ैर, सोओ।"

कह कर चाँदनी द्वार की चिक गिरा कर चली गई।

दिन के चार बजे के क़रीब नींद टूटी। पसीने से
बिछौना भीग गया था, बड़े जोर की प्यास लग रही
अँगड़ाई ले कर उठ बैठते ही चाँदनी चिक उठा कर अन्द
गई। मैंने कहा—"पानी पिलाओ ज़रा। क्या वक़्त होगा?

"सवा चार बजा है।" कह कर चाँदनी उलटे पाँवों
कर पानी ले आई, और गिलास मेरे हाथ में थमा कर प
पानी रखने की तिपाई पर बैठ गई। मैंने गिलास भर का
एक ही साँस में गले के नीचे उतार कर कहा—"ओह
गरमी है! शाम होने को हुई; मगर अब भी जैसे आग
रही है। घर में ठंढा पानी तो होगा नहीं?"

"न होगा, खींच लिया जायगा। कूँआ तो घर ही में है। क्या करोगे ?"

"नहाऊँगा।"

"अभी कैसे नहाओगे ? अभी-अभी पसीने से भींग कर उठे हो, नहा लोगे, तो नुक़सान करेगा। जरा दम ले लो।"

कहने के साथ ही चाँदनी मेरे नजदीक खिसक कर पंखा करने लगी। मेरा समग्र अन्तःकरण एक अद्भुत प्रेम-रस से ओत-प्रोत हो उठा। कुछ संकोच भी मालूम हुआ, मगर उसे वहीं का वहीं दबा गया। कारण, जानता था चाँदनी के ऊपर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता, वह अपना काम किए ही जायगी। कुछ देर बाद चाँदनी ने आप ही आप कहा—"जीजा जी को तुमने और तो कहीं देखा नहीं ?"

मैंने कहा—"और कहीं देखने का अवसर कहाँ मिला ? मँझले दादा की शादी में तो शायद आए न थे।"

"आए थे, मगर उसी दिन लौट गए थे। बारात तक जाने का मौक़ा न मिल सका था।"

"उसी दिन क्यों लौट गए थे ?"

"छुट्टी न मिली था।"

"फिर आए क्यों ?"

"मुझे भेजने। मैं उन दिनों वहीं थी।"

कुछ देर चुपचाप पड़े रहने के बाद मैंने पूछा—"अच्छा, तुम्हारे जीजा जी की उम्र क्या होगी ?"

चाँदनी ने मेरे मुख पर एक सन्देहात्मक दृष्टि डाल कहा—" उम्र की बात मुझे क्या मालूम ? यही तीस ब की होगी। "

" अच्छा ! "

" और क्या ? "

" शायद तुम भूलती हो। "

" क्या मालूम, भूल ही रही हूँगी। मगर जहाँ तक मालूम है, इतनी ही होगी। "

मुझे आश्चर्य-स्तब्ध देख कर चाँदनी ने कहा—" क्यों, क्या है ? उम्र पूछ कर क्या करोगे ? "

" करूँगा कुछ नहीं। मुझे तो बड़ा ताज्जुब हो रहा है।

" किस बात का ? "

" मिश्रा जी की उम्र सुन कर। "

" क्यों ? "

" मुझे तो उनकी उम्र बीस-बाइस साल से ज्यादा मालूम होती। "

चाँदनी ने खिलखिला कर कहा—" इसी समझ को बी० ए० के इम्तिहान में बैठे थे ? तब तो पास होना ही है। "

" यह चाहे जो हो; लेकिन अगर मिश्रा जी की सचमुच इतनी ही है, तो उनका शारीरिक गठन बेशक बढ़िया है। ऐसे सुन्दर स्वास्थ्य पर तो ईर्षा होती है। "

चाँदनी चुपरही। मैंने कहा—" तुम्हारी बड़ी तारीफ कर
हे थे।"

" कौन ? "

" तुम्हारे जीजा जी। "

" मेरी क्या तारीफ़ करेंगे ? मुझसे तो नाराज़ हैं। "

" नाराज़ क्यों ? "

" अब यह मुझे क्या मालूम ? मैं क्या किसी की तबीयत का
ाल जानती हूँ ? "

कहने के साथ ही चाँदनी ने बाहर की ओर मुँह करके
हा—" अच्छा, अब उठो, नहाओ-वहाओ। शाम तो हो
ई।"

बाहर झाँक कर देखा, सचमुच आँगन की धूप दीवारों पर
ढ़ कर अदृश्य हो चुकी है। उठने को हुआ कि कमल कुमार ने
ाकर कहा " मिश्रा जी आए हैं। "

" कहाँ हैं ? "

" बाहर बैठे हैं। "

मेरे कुछ कहने के पहले ही चाँदनी ने कहा—" तो भैया, तब
क तुम उनके पास जाकर बैठते, इन्होंने तो अभी नहाया-खाया
ी नहीं। "

कमल कुमार ने चलते-चलाते मुझसे कहा—" अच्छा तो
ाप इन कामों से निपटिए, मैं चल रहा हूँ। "

स्नानादि से छुट्टी पाकर खाने बैठा ही था कि मिश्रा जी
आँगन में आकर आवाज़ दी—" राजेन्द्र बाबू ? "

" आइए ! " सामने बैठी, पंखा झल रही चाँदनी से
कहा—" हटो, मिश्रा जी..... । "

" तो क्या हुआ, आने दो । "

" अरे क्या हो रहा है भई, आप तो बिलकुल......।
कहते-कहते रसोई घर के सामने आते ही मिश्रा जी का हँस
हुआ मुख मलिन पड़ गया । किन्तु तत्क्षण ही सँभल, हँस
बोले—" आप खा रहे हैं ! मुझे मालूम न था, माफ़ कीजिएग
चन्दो, कुछ बैठने को दो । "

चाँदनी ने बग़ल की कोठरी से एक कुर्सी लाकर आँगन
रख दी । मिश्रा जी ने बैठ कर कहा—" जल्दी न कीजिए
राजेन्द्र बाबू, मैं बैठा हूँ । "

इसके बाद नज़दीक खड़ी चाँदनी की ओर बिना दृष्टि उठ
ही पूछा—" अम्मा कहाँ हैं ? "

" पूजा कर रही हैं । "

" और पार्वती ? "

" छत पर हैं । "

" बुलाओ ज़रा । "

तब तक भाभी खुद ही आ गईं । बोलीं—" जीजा जी
क्या ? "

" हाँ, मैं ही हूँ । आओ । अच्छी रहीं ? "

" खूब । नमस्ते । "

" नमस्ते । हाँ-हाँ, यह क्या कर रही हो ? ज़मीन पर बैठकर
पड़े ख़राब करने से फ़ायदा ? ज़रूरत से ज्यादा अदब-कायदा
मुझे पसन्द नहीं, यह तो जानती हो । उस पलंग पर बैठो । "

भाभी संकुचित भाव से पलंग पर बैठ गईं । मैं उधर ही मुँह
किए देख रहा था । चाँदनी ने पूछा—" चाहिए कुछ ? "

" कुछ नहीं, बस खा चुका । " मैंने दो-एक घूँट पानी पीकर
उठने का उपक्रम करते हुए कहा ।

चाँदनी चट रसोईघर में आ गई—" बैठो, बैठो, उठे कहाँ
जा रहे हो ? अभी खाया ही क्या है ? थाली में तो सब ज्यों का
त्यों रक्खा हुआ है । "

मैंने कहा—" बैठने को मैं दो-चार घंटे बैठ सकता हूँ ; मगर
जब खाना नहीं, तो बैठ कर क्या करूँ ? "

" खाओ, और क्या करोगे । बहुत नहीं, अच्छा एक पूड़ी
और खा लो । "

सिर हिलाते ही चाँदनी ने थाली से एक कौर उठा कर ज़बर-
दस्ती मेरे मुँह में रख दिया । खाते-खाते सिर उठा कर मैंने देखा,
भाभी से बातें करते हुए मिश्रा जी इधर ही देख रहे हैं ।

खा-पीकर मिश्रा जी के नज़दीक ही एक कुर्सी पर जा बैठा ।
चाँदनी पान ले आई । मैंने कहा—" लीजिए । "

" पान ? " मिश्रा जी ने मुँह बिगाड़ कर कहा—" मैं तो
खा चुका, ख़ैर एक लाने ही दो । "

पान चबाते-चबाते मेरी ओर मुँह करके मिश्रा जी ने कह
" चलियेगा सिनेमा देखने ? बड़ा अच्छा फ़िल्म आज कल
रहा है।"

" क्या ? "

" समुद्र-मंथन।"

" चलता ज़रूर, मगर मुझे कल घर जाना है।"

" घर भी चले जाइएगा, जल्दी क्या है ? और कम से
कल तो आपका जाना हो ही नहीं सकता।"

मैंने हँसकर कहा—" यह क्यों ? "

" इसलिए कि जिनके यहाँ आए हो, उनके घर तो अभी
दिन भी नहीं रहे, फिर जाने का इरादा कैसे कर रहे हो ?
देखो, अम्मा भी आ गईं। यह अगर कह दें, तो कल
सकते हो।"

" क्या बात है, भैया ? "

" अम्मा, यह कल जाने को कहते हैं, जाने दिया जाय ?

" जाने कैसे दिया जायगा ? अभी मेरे घर तो रहे हो न
दो-तीन दिन तो अभी जाने का नाम ही न लें।"

मिश्रा जी ने उच्च हास्य के साथ मुझे झकझोरते हुए कह
" कहिए, यही मैं पहले कह रहा था या नहीं ? अब तो सि
देखना तय रहा। कौन-कौन चलेगा ? "

पुरखिन मैया को छोड़ और सभी चलने को तैयार हो ग
मिश्रा जी ने कहा,—" तो फिर सीटें रिज़र्ब करा आऊँ, बाद

यद जगह मिलने में दिक्कत हो। चलिए राजेन्द्र बाबू, आपको ा लाऊँ। ”

कह कर मिश्रा जी उठने को हुए कि पुरखिन मैया ने कहा— तुम तो चल दिए भैया! तुमसे एक बात कहनी थी। ”

“ कहिए। ”

पुरखिन मैया इधर-उधर करके बोली, कहना यह है कि...... ौर मेरी ओर देख कर रुक गई।

चाँदनी ने कहा—“ जो कुछ कहना हो कहो न अम्मा, डर कसे रही हो ? कहो तो इन्हें बाहर भेज दिया जाय। ”

“ बाहर भेजकर क्या होगा ? तेरा नटखटपन दूर नहीं होता, न्दो ! मैं कहूँ, चाहे न कहूँ, तुझे क्या पड़ी है ? ”

“ तो फिर जीजा जी को व्यर्थ क्यों बैठाल रक्खा ? ”

मिश्रा जी ने कहा—“ अगर मेरा बैठना तुम्हें नागवार लगता , तो लो मैं चला। ”

“ बैठिए, बैठिए, ” चाँदनी ने लज्जाकुंठित स्वर में कहा,— मेरा मतलब यह न था। मैंने तो वैसे ही कह दिया था। आप कुछ का कुछ अर्थ लगाने लगते हैं। ”

“ अहो भाग्य ! ” मिश्रा जी का उखड़ा हुआ आसन पुनः म गया। किन्तु उनकी यह एक शब्द की छोटी-सी, तीखी ंगोक्ति चाँदनी के क्या, मेरे कानों में भी खटक उठी। और ाँदनी ? वह तो क्षण भर के लिए जैसे अवसन्न पड़ गई। कुछ किसी के मुँह से कोई बात न निकल सकी। अन्त में मिश्रा

जी ने उस क्षणिक निस्तब्धता को भंग करके कहा—" हाँ,
क्या कह रही थीं अम्मा ? राजरानी के विवाह के बारे
नहीं ? उसकी चर्चा तो कमल बाबू मुझसे कर चुके।"

" कब ? "

" अभी जब बाहर बैठा था।"

पुरखिन मैया ने कहा—" तो फिर दुबारा कहकर क्या
वही बात है।"

" कहो, चाहे न कहो; सम्बन्ध बड़ा अच्छा है, यह मैं
कंठ से कह सकता हूँ।"

पुरखिन मैया अत्यधिक प्रसन्न होकर बोलीं—" यह सब
लोगों का आशीर्वाद है भैया ! जैसे-तैसे, भले-बुरे अगर
लड़की भी पार हो जाती तो, समझ लो, इस बुढ़ापे में मेरा
पार हो जाता। फिर मुझे किसी तरह की फ़िक्र न रह जाती।

" सब हो जायगा, अम्मा ! तुम्हें चिंता किस बात की है

साथ ही चुप बैठी चाँदनी की ओर मुख़ातिब होकर मिश्र
ने सहास्य कहा, " उठो, पान ले आओ, कैसी गुम-सुम बैठी
दावत में बुलाई नहीं गई, तो क्या उसकी अदावत मान कर
भी न खिलाओगी ? हताश न हो, जल्दी ही तुम लोगों की
ख़बर ली जायगी।

चाँदनी ने उठ कर हँसते हुए कहा—" ख़बर ली जाय,
न ली जाय ; इन बातों में अदावत मानने की आदत हम
की नहीं। इसके तो आदी आप ही लोग हुआ करते हैं।"

"सुनती हो अम्मा, अपनी लड़की की बातें ? कैसा असत्य
ायोग हँसते-हँसते हम पर लगा दिया ! "

पुरखिन मैया कुछ बोली नहीं, हँसती ही रह गईं।

चाँदनी पान ले आई, खाकर हम लोग उठ कर चल दिए।
ते में मिश्रा जी ने कहा—"कहिए, भावी पत्नी से साक्षात्कार
चुके या नहीं ?"

मैंने समझ कर भी नासमझों की तरह प्रश्न किया—"साक्षा-
र कैसा ?"

"देख-भाल चुके या नहीं ? इतनी मोटी बात नहीं समझते,
र निकट भविष्य में एक नवयुवती का पाणि-ग्रहण करने जा
हो ! परमात्मा ही रक्षक हैं।"

मैं हँस पड़ा। मिश्रा जी ने उसी सिलसिले में कहा—"तुम
ों में कैसी निभेगी, यह तो मैं जानता नहीं भाई; मगर लड़की
भले स्वभाव की है, इसमें शक नहीं। बल्कि इस गुण में वह
पनी सभी बहनों से बढ़-चढ़ कर है। कुछ अपनी भाभी से
लता-जुलता रूप-रंग और स्वभाव समझ लो।"

एक मधुर आवेश अंग-प्रत्यंग में समा कर रक्त-संचालन को
त्र से तीव्रतर कर रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे मिश्रा जी
ी हृतन्त्री के तार-तार से परिचित हों, उन्हें मनमाने ढंग से
कृत कर रहे हों। मैं बोला, "भाभी के से शील-स्वभाव वाली
ौरत तो सौ-दो सौ में भी मिलना मुश्किल है।"

मिश्राजी ने छूटते ही कहा—"और उस जैसी तो हजार, दो

हज़ार में भी शायद ही मिले। यह मौखिक प्रशंसा नहीं, अ
जन्य बात है जनाब ! दस, ग्यारह बरस की रही होगी, त
साथ कुछ दिनों झांसी में रही थी। चाँदनी भी थी ; मग
साहबा के साथ चौबीसों घंटे मलेरिया में बेहोश पड़ी रहती
उस समय बच्चों की देख-रेख, बीमारों की सेवा-शुश्रूषा, और
वक्त पर रोटी-पानी देना, सब इसी बेचारी के ज़िम्मे था,
उस ज़िम्मेदारी को इसने इस निपुणता से निभाया था कि
उम्र में वह असम्भव नहीं, तो अति कठिन ज़रूर था। इ
कार्य-कुशलता और स्वभाव की मृदुता का पता तो मुझे
समय चल गया था, अब तो वे गुण अपने विकास पर हैं,
का क्या पूछना ! सचमुच राजेन्द्र बाबू, आप बड़े भ
शाली हैं।"

मैंने मुसकरा दिया। सिनेमा हाउस आ गया था। दरि
करने पर मालूम हुआ कि मशीन बिगड़ गई, आज खेल
होगा।

सुन कर मिश्रा जी हँस पड़े। बोले "वाह ! बिसमिह
ग़लत हो गया। आज जब पहले-पहल समुद्र-मंथन देखने
इच्छा की, तो मशीन फेल हो गई। चलिए, चलें राजेन्द्र बाब

चौराहे पर पहुँच कर मिश्रा जी ने कहा—"अब आप
इधर जाइएगा। कल सबेरे मेरे यहाँ आइएगा न ?"

"ज़रूर।"

दूसरे दिन मिश्रा जी के अनुरोध से सिनेमा देख कर,

-तैसे पिंड छुडा कर रात वाली गाड़ी से घर को भागा। फ़िक्र कि गृह-कार्यानभिज्ञ मँझले दादा अपने खान-पान की भी वस्था कर पाते होंगे या नहीं। जिस समय घर के दरवाज़े पर चा, दिन के दस बज रहे थे। यह मँझले दादा के ऑफ़िस ने का समय था; किन्तु आँगन में पैर रखते ही सामने कमरे ओर देखते ही मैं चौंक पड़ा। चटपट चौखट पर पहुँच कर वाज़ दी—"मँझले दादा।"

"कौन? राजेन्द्र!" मँझले दादा ने चादर से सिर निकाल र क्षीण कंठ से कहा—"आ गए भाई मैं तो आज तुम्हारा ज़ार हो कर रहा था।

"वे तो नहीं आ सकीं। उन्हें कमल बाबू ने महीने भर बाद द ही पहुँचा जाने को कहा है। मुँह में यह क्या हुआ?"

मँझले दादा कराह कर उठ बैठे। बोले—"जिस दिन से तुम ग गये, उसी दिन से इस दाढ़ में असह्य पीड़ा हो रही है। ाज तो कुछ कम है।"

इधर कई दिन से जो एक काल्पनिक सुखस्रोत तन-मन को ाप्लावित कर रहा था वह इस समाचार से समूल सूख गया। झले दादा का मुँह काफ़ी सूजा हुआ था और कई दिन से लगा- ार पीड़ा सहते सहते मुरझा कर पीला पड़ गया था। उधर देख र मुझे जैसे रो पड़ने की इच्छा होने लगी। पूछा—"कुछ खाया- या जाता है।

मँझले दादा ने तकिए पर अपनी दोनों कुहनियाँ टिका कर

कहा—" खाने-पीने के नाम पर जो कुछ थोड़ा-बहुत दूध ग
नीचे उतर पाता है, वही उठने-बैठने की शक्ति देता है। अ
दर्द के मारे मुँह ही नहीं खुलता, खाना-पीना कैसा ? कमल
अब कैसे हैं ? "

" अच्छे हैं। आप को पूछ रहे थे ? "

इसके बाद ससुराल सम्बन्धी अन्य दो चार बातें पूछ
बाद मँझले दादा लेट रहे। मैंने घर भर में घूम-घाम कर
रोज़मर्रा काम में आने वाली प्रायः सभी चीज़ें स्थानान्तरित, अ
व्यस्त आँगन और कोठरियों में बिखरी पड़ी है। मँझले दा
जो चीज़ जहाँ से ली, वह फिर अपनी जगह पर पहुँच न स
यह काम सदैव ही उनकी प्रकृति के प्रतिकूल रहा है।

मेरे बहुतेरे पाठक मेरी इस अनधिकार आलोचना
हँसेंगे—अरे भले आदमी जिसकी तबीयत ख़राब हुआ करती
वह सुव्यवस्था नहीं देखता। इसके सिवा इन घरेलू झंझट
सिर खपाना पुरुष का काम भी नहीं।

मानता हूँ; किन्तु किन्हीं विशेष परिस्थितियों को छोड़,
दम्पति एक के अभाव में उसका कार्य-भार उठा सकने की क्ष
नहीं रखते वे समय आ पड़ने पर हमारे मँझले दादा की ही त
अड़चन पर अड़चन उठाते हैं और कुछ भी कर-धर नहीं पा
यह छोटे मुँह बड़ी बात हो सकती है, किन्तु ग़लत नहीं।

घंटे भर बाद नहा-धो कर जब मैं कमरे में लौटा, तो मँ
दादा ऊपर की ओर मुँह किए खर्राटे भर रहे थे। मेरे खांसने

आँखें खोल दीं। कहा—नहा चुके तुम ! अब खाने-पीने के लिए क्या करोगे, बना सकोगे ? "

" क्यों, बना सकने को क्या हुआ है ? क्या बनेगा, यही तो पूछने आया हूँ।

" अपने लिए चाहे जो बनाना, मेरे लिए थोड़ा पतला-पतला साबूदाना तैयार कर देना। "

"बहुत अच्छा।"

रसोईघर में जा, चूल्हे के सामने बैठ कर मैं अनमने भाव से आग जलाने का उपक्रम करने लगा।

## छठाँ परिच्छेद

दो महीने पहले एक दिन जिस रास्ते से चाँदनी और भ
को लेकर गया था, आज उसी रास्ते वर-रूप में जाते हुए मैं
अपने आत्मोल्लास को सँभाल नहीं पा रहा था। ग्रीष्म-काल
धूसर, हरीतिमा-विहीन मैदान के बीच से तूफ़ान मेल स
भरती, बेतहाशा भागी जा रही थी, और मैं खिड़की से
निकाले प्रकृति के उस शुष्क सौंदर्य में भी एक सरसता
अनुभव कर रहा था।

पिछले स्टेशन पर दो-तीन ताज़े समाचार-पत्र ख़रीद
थे, किन्तु किसी के भी पढ़ने में तबियत न लग रही थी। स
के अस्त-व्यस्त पन्ने व्यर्थ एक किनारे पड़े हुए भीतर आ
वायु के झोंकों में 'फर' 'फर' उड़ रहे थे। कुछ ही घंटे
घटित होने वाली जीवन की जिस महत्वपूर्ण घटना ने हृदय
हलचल मचा रक्खी थी, उसके आगे अख़बारों की अदृश्य, वि
घटनाएँ क्या थीं? ख़ैर।

रातके लगभग दस बजे विवाहकी प्रारम्भिक रस्में अदा हो ज
पर बधू-पक्ष की ओर से वर की बुलाहट हुई। पालकी में बढ़ि
क़ीमती बिछावन डाल दिया गया, मैं जा बैठा। कहारों ने पाल
उठाई, मज़दूर गैस के हंडे सर पर रख कर आगे आगे च

ाजों की सुमधुर स्वर-लहरी से समग्र वातावरण चंचल और
दोन्मत्त हो उठा।

द्वार पर पालकी रख दी गई। चौखट लाँघते ही, पूर्व
श्चय के अनुसार चाँदनी किवाड़ों के पास ही खड़ी मिली।
खते ही मुसकरा कर बोली—"आ गए। आज ही रात
ो तो मालूम होगा कि विवाह कैसी बुरी बला है। मुँह तो
भी से सूखा जा रहा है, रात भर जागते बैठे रहने पर न जाने
या हालत होगी।"

जवाब ओठों तक आकर लौट गया। कुछ अपनी परिस्थिति
ा ख्याल कर और कुछ विवाह-मंडप के तले बैठीं वर को अद्भुत
ालोचक की दृष्टि से देखने वाली स्त्रियों से डर कर चुप रह जाना
श्रेयस्कर समझा। नियत स्थान पर बैठते ही वयोवृद्ध पुरोहित
विवाहारम्भ कर दिया।

रात के दो बज गए। बैठे-बैठे देह अकड़ गई, फिर भी कन्या-
न करने वालों का ताँता टूटता न दिख रहा था। चाँदनी मुझ
कुछ ही दूर बैठी थी, मुझे इधर-उधर करते देख कर बोली—
बैठे-बैठे कमर दुखने लगी क्या?" मगर सबेरे के पहले तो
ने पाओगे नहीं। सिर्फ एक बात हो सकती है।

मैंने सर उठा कर कहा—"क्या?"

"पान की दो गिलौरियाँ और चुटकी भर जर्दा मुँह में डाल
ने से तुम्हारी यह सारी थकान अभी दूर हो सकती है।
ऊँ?"

कह कर चाँदनी मेरे उत्तर की अपेक्षा किए बिना ही
पड़ी।

" सुनो तो— "

" कहो। " चाँदनी घूम कर खड़ी हो गई और मेरी
देख कर विचित्र ढंग से मुसकराने लगी।

मैं उसकी मनोवृत्ति ताड़ कर हँसता हुआ बोला—"जा
तो हो, पानवान खाने की मेरी आदत नहीं। इसके सिवा
जगह यह झंझट..."

चाँदनी ने बीच ही में कहा—"झंझट इसमें कुछ नहीं, थू
थाकने के लिए तुम्हें बार-बार उठना न पड़ेगा, दूसरा इन्त
हो जायगा। अरे कौन बैठा है, उस कोने में ? भैया ज़रा
पीकदान उठा कर यहाँ रख दे। '

पीकदान यथास्थान आ जाने पर चाँदनी ने मुझे दो गिलो
खिला दीं, और इसके बाद मेरे विरोध की कुछ भी पर
किए बिना पान का वह दौर सबेरे तक जारी रक्खा। सच
उस रात पान खाते-खाते मेरी तबियत ऊब गई थी। ज़बान
पीक की एक ऐसी मोटी-सी तह जम गई, जो बाद को
मुश्किल से साफ़ हुई थी।

आँगन में उषा का स्निग्ध आलोक फैल जाने पर पुरोहि
विवाह-वेदी पर से उठने का आदेश दिया। जान-में-
आई ; किन्तु उठते ही चाँदनी ने कहा " अभी कहाँ चले ? "

" क्यों, अब क्या है ? "

" बहुत कुछ। अभी गृह-देवता को प्रणाम करना तो बाक़ी ी है।"

" चलो फिर लगे हाथों वह भी हो जाय आज तो—।"

कमल कुमार की स्त्री शारदा, चाँदनी के पीछे बैठी, उनींदी ाँखों से विवाह-कृत्य देख रही थी। मेरी अपूर्ण बात को सुन, ाँदनी के कन्धे पर चिबुक रख मुसकरा कर बोली—" आज ड़ी आफ़त में पड़ गए बेचारे! अब इन्हें ज़्यादा तंग न करो ीबी, जल्दी ही छुटकारा दे दो।"

चाँदनी ने भौजाई की तरफ़ घूम कर हास्य-मिश्रित स्वर में हा—छुटकारा देने से भी तो अब यह नहीं छूट सकते। जिस वाहिक दलदल में इन्होंने जानबूझ कर अपने को फँसा दिया , उसमें से निकलने की कोशिश करके ही तो आदमी अधिक सता है।"

दोनों हँस दीं। मैंने खड़े-ही-खड़े पान थूकने के लिए अपने ाँयी ओर मुड़ते ही देखा कि दीवार के सहारे बैठी हुई तीन-चार वतियाँ चाँदनी की ओर देख कर बुरी तरह मुँह बिचका रही । किन्तु उधर अधिक ध्यान देने का समय न था—उचित भी था। नाइन ने हम दोनों ( वर-वधू ) का गठ-बन्धन कर दिया, ाँदनी आगे और शारदा पीछे हो लीं, और हुक्म हुआ— चलो।"

एक बड़ी-सी कोठरी के भीतर अवस्थित एक छोटी कोठरी गृह-देवता के सामने जाकर बैठ गया, और चाँदनी-शारदा

जो कुछ बतलाती गई, कर दिया। इससे फ़ुरसत मिलने
शारदा तो श्रीमती को लेकर आँगन में चली गई और चाँदनी
मुझे बाहर वाली उस लम्बी कोठरी में लाकर बैठा दिया औ
बोली—"अब क्या इरादा है ?"

"कैसा ?"

"यहाँ का काम तो अब ख़तम हो गया। रात भर के ज
हो, कहो तो पलंग बिछा दूँ, सो रहो। जनवासे जाकर क
करोगे।"

"न जाने से ठीक न होगा।"

चाँदनी ने हँस कर कहा—"क्यों ? कोई कुछ क
लगेगा ?"

"कहेगा कौन ? अभी जाने दो, फिर चला आऊँगा।"

"ख़ैर, तुम्हारी मर्ज़ी। मगर कुछ खा लो, तब जाओ।"

व्यर्थ का वाद-विवाद न कर शौचादि क्रिया से निपट
खाने बैठ गया। चाँदनी ने जलपान का बहुत-सा सामान
बड़ी-सी तश्तरी में लगा कर सामने रख दिया। मैंने उस पर
सरसरी दृष्टि डाल कर कहा—"भला इतने का क्या होगा
तुम्हारी इस आदत से सचमुच मैं बहुत आजिज़ आ गया हूँ।

चाँदनी हँस कर बोली—"तो फिर इसके लिए क्या कि
जाय ? दो-एक दिन आजिज़ ही हो लो, इसके बाद जब अ
घर चले जाओगे, तो मैं तुम्हें वहाँ अपनी आदत से आजि
करने न पहुँचूँगी। खाओ-खाओ।"

चाँदनी की एक सीधी-सी बात से उसकी प्रछन्न मनोवेदना का जो सकरुण स्वर अकस्मात् बज उठा, उसने मुझे एक बारगी चौंका दिया। क्षण भर स्तब्ध बैठे रहने के बाद मैं खाने तो लगा; किन्तु जैसे किसी भी चीज़ में स्वाद न मिल रहा हो, इस तरह एक-एक चीज़ अनमने भाव से उठा-उठा कर मुँह में रखने लगा।

खा-पीकर चाँदनी के हाथ से पान लेते-लेते मैंने कहा—"देखो, एक बात मैं तुम से पूछता ही रह गया। मिश्रा जी आये हैं या नहीं? अब तो शायद सहारनपुर में हैं।"

"हाँ। आये तो हैं।"

"कब? मुझे मिले नहीं।"

"आज ही रात की ट्रेन से आये हैं। छत पर पड़े सो रहे हैं। जगवा दूँ?"

"क्या करोगी। जब आये हैं, तो मिलेंगे ही। अच्छा मैं चलता हूँ।"

जनवासे में आ, समवयस्कों की चुटकियों से जान बचा और ताश-शतरंज के हो-हल्ले से अलग हट, एक किनारे पड़ कर सो रहा।

उस दिन का अधिकांश नींद की खुमारी में और शेषांश मिश्रा जी से बातें करने में बीत गया। शाम को कुछ अपनी इच्छा से और कुछ यार लोगों के कहने से ठंढाई में थोड़ी-सी भांग मिला ली। आदत थी नहीं, पीने के कुछ ही देर बाद विजया

जब अपनी बहार दिखलाने लगी, तो मेरे होश उड़ गए। सु
करता था, भंग के नशेवाला आदमी कभी अकारण हँसने औ
कभी रोने लगता है। सोचा, हँसना तो किसी हद तक जाय
हो सकता है; लेकिन अगर कहीं रोने की ओर विचार-धारा मु
पड़ी तो ग़ज़ब ही हो जायगा।

रात को दस बजे के क़रीब भात-भोज का आमन्त्रण आया
बरातियों के साथ मैं भी खाने के लिए अन्दर पहुँचा; किन
जल्दी-जल्दी—साधारणतः मैं देर तक खाने का आदी हूँ—खाक
सब के साथ ही बाहर निकल आया। किन्तु जिस भय
इतनी जल्दीबाज़ी की, वह आखिर पल्ले पड़ ही गया। कमल
कुमार ने पान बाँटते- बाँटते मुझे देख कर कहा—"आप अन्द
चलिए, आपको वहीं पान मिलेंगे।"

समझना बाक़ी न रहा कि किसके इंगित से यह प्रबन्ध हुआ
है। कुछ देर बाद कमल कुमार के पीछे-पीछे अन्दर पहुँचने प
चाँदनी ने कहा—" मैं देखती ही रही और तुम चोरों की तरह
चुपके-चुपके निकल गए—अच्छे आदमी हो ! बुलाती न, तो
शायद आते भी नहीं।"

मैंने खड़े ही खड़े हँस कर कहा—"आने में कोई बात न थी
मगर खाना खाने के बाद एक तो रात में बैठने की मेरी वैसे ही
आदत नहीं, दूसरे कल के रात्रि-जागरण की वजह से पलकें बुरी
तरह भारी हो रही थीं, इसीलिए चला...।"

चाँदनी ने मेरी बात पूरी न होने दी, बीच ही में बोली—

"इसीलिए क्यों चले गये, यहाँ क्या सोने को जगह न थी ? यह पलंग तुम्हारे लिए ही बिछा है, आराम करो। अभी हम लोगों का खाना-पीना होने जा रहा है, इसके बाद जो मेहमान-दारिनें तुम्हें देखने, तुम से बातें करने को उत्सुक हैं, उनके सामने तुम्हें हाज़िरी देनी होगी। मगर घबराओ नहीं, अभी डेढ़, दो घंटे तक तुम्हारे आराम में ख़लल डालने कोई न आवेगा।"

कह कर चाँदनी जाते-जाते ठिठुक कर बोली—" अब रात को तुम्हारा जनवासे जाना तो हो नहीं सकता। कहो तो किसी से वहाँ कहलवा भेजूँ।"

विजया की उद्भ्रान्त तरंगों में विचार-शक्ति लुप्त हुई जा रही थी, और खुश्की के मारे ज़बान, तालू और गले का बुरा हाल था। तकिए पर सिर रख, लम्बी साँस छोड़ कर मैंने कहा—" जो अच्छा समझो, करो। मगर जाने के पहिले मुझे एक पान खिलाती जाओ।"

" लो, पान तो मैं लिए ही खड़ी हूँ।"

चाँदनी ने हाथ बढ़ा कर मुझे गिलौरियाँ खिला दीं और चली गई। मैं कुछ देर आँखें बन्द किए पड़े रहने के बाद न जाने कब निद्रा की गोद में लुढ़क गया।

आधी रात के क़रीब जब आँखें खुलीं, तो तबियत कुछ हलकी जान पड़ी। भंग का नशा उतर गया था, सिर्फ़ खुश्की बाक़ी रह गई थी। प्यास बड़े ज़ोर की लगी थी ; मगर पानी मिलने का कोई डौल न दीख रहा था। मेरे पलंग से कुछ ही

फ़ासले पर घर भर की स्त्रियाँ सामूहिक रूप से बैठी संग
साधना में तल्लीन थीं। चाँदनी के हाथ में हारमोनियम था
उसी के उठते-गिरते स्वरों पर अनेक सुरीले कंठ सम्मिलित रूप
आलाप रहे थे—'चलो सो रहो आधी रात भई।'

पूर्णिमा का चन्द्र बीचो-बीच आकाश में ठीक सर
खिलखिला रहा था—स्वच्छ, चमत्कृत चाँदनी आँगन में
ओर से उस छोर तक फैली पड़ी थी। कुछ देर आँखें बन्द
उस सुकुमार संगीत का रस लेता रहा; किन्तु जब प्यास ने
न रहने दिया, तो उठ कर बैठ गया। मेरे उठ बैठते ही चाँदनी
हारमोनियम बन्द कर, आकर कहा—"क्या है? तुम तो
ही आप जग पड़े।"

मैंने जमुहाई लेते हुए कहा—"प्यास लगी है, प
पिलाओ।"

"बहुत अच्छा।"

चाँदनी एक गिलास में पानी ले आई, किन्तु गिलास
हाथ में देते-देते उल्टे-पाँवों लौटती हुई बोली—"पानी अभी पी
मत, मैं आ लूँ।"

कह कर चली गई और तत्क्षण ही एक तश्तरी में थो
सी मिठाई लिए वापस आकर बोली—"लो, पहले इसे
लो। फिर पानी पियो।"

"यह क्यों?"

"सो कर उठे हो। ख़ाली पानी पी लेने से ज़ुकाम हो जायगा।"

मैंने तश्तरी से मिठाई का एक टुकड़ा उठाते उठाते कहा—"यह वक़्त-बेवक़्त के खाने का अनुरोध तो तुम्हारा बहुत बुरा है।"

"तो फिर क्या किया जाय ?" चाँदनी ने लापरवाही से हँस कर कहा—"अच्छा है, चाहे बुरा उसे माने बग़ैर तो तुम्हारी गुज़र नहीं।

"यह तो ठीक ही है।"

पानी पी, गिलास चाँदनी के हाथ में देकर मैं पुनः लेट गया। चाँदनी ने कहा—"यह क्या ? क्या फिर सोने का इरादा है ?"

"सोने का इरादा अब क्या होगा ! घंटे, दो घंटे तो अब नींद आ ही नहीं सकती—लेटे-लेटे तुम लोगों का गाना सुनूँगा।"

किन्तु चाँदनी के मुँह से मेरे इस निश्चय को सुन कर एक भी स्त्री गाने को तैयार न हुई, फलतः कुछ देर बाद वह संगीत-सभा ही विसर्जित हो गई।

रात ज्यादा जा चुकी थी, इसलिए बाहर की स्त्रियाँ दस ही पाँच मिनट में मुझे अपने वाक्-जाल में फंसाने का असफल प्रयत्न करके अपने-अपने घरों को चली गईं, और घरवालियाँ कुछ आँगन में, कुछ छत पर जाकर सो रहीं। मगर मेरी नींद कुछ ऐसी उचटी कि घंटों आँखें बन्द किए पड़े रहने पर भी आने का

नाम न ले रही थी। निद्रितों के ख़र्राटे से मुखरित, फिर भी सुनसान आँगन में उस समय मुझे ऐसा बुरा लगने लगा क्या कहूँ !

चाँदनी को शायद कुछ खाँसी की शिकायत थी, सोते- कई बार खांसने पर जब कल न पड़ी, तो पानदान से पान नि कर उन्हें धोने के लिए मेरे पलंग के पास से ही हो कर लगी। मैंने कहा—" क्या पान लगाने जा रही हो ? "

" हाँ। तुम क्या अभी जग ही रहे हो ? "

" और क्या। मुझे आज नींद ही नहीं आ रही है। "

" क्यों ? "

" न जाने क्यों। मुझे तो बड़ा ताज्जुब हो रहा है। "

चाँदनी ने अपनी मधुर हँसी के साथ कहा—" इसमें ता वाली कोई बात नहीं। ताज्जुब तो तब होता, जब तुम इस स बेख़बर पड़े सो रहे होते। आख़िर विवाह की ख़ुशी भी तो चीज़ है। "

कह कर चाँदनी पान धोकर वापस लौटते-लौटते बोल " क्या वक्त होगा अब ? दो से ऊपर ही होगा। "

" और क्या। "

चाँदनी अपनी जगह पर बैठ कर चुपचाप पान लगाने ल और लगा चुकने पर मुझ से बोली—" खाओगे ? ले आऊँ। "

" लाओ, एक खा ही लूँ। "

चाँदनी के हाथ से पान लेकर मैंने कहा—"तुम्हारे यहाँ कुछ पढ़ने-पढ़ाने का मसाला हो तो लाओ। इस तरह नींद के इन्तजार में पड़े-पड़े तो तबियत ऊबती है।"

"अब क्या पढ़ोगे? तीन-चार घंटे तो रात रह गई। आँखें बन्द कर सो जाने की कोशिश करो, नींद आ जायगी। कल की तरह अगर आज भी जगे, तो बुरा होगा।"

चाँदनी की बात मान कर यही किया। सचमुच कुछ देर करवटें बदलते रहनेके बाद न जाने कब निद्रादेवी ने अपना स्निग्ध अंचल मुझ पर फैला दिया—मुझे यह मालूम भी न हो सका।

इसके बाद के दो दिनों में कोई विशेष उल्लेखनीय बात नहीं हुई; किन्तु चाँदनी का जो सरस प्रेम-व्यवहार मुझे तेज़ी से अपनी ओर आकर्षित कर रहा था, उसमें रत्ती भर भी कमी नहीं हुई। बल्कि कभी-कभी उस व्यवहार में चाँदनी के हृदय का ऐसा स्पष्ट प्रतिबिम्ब मुझे दृष्टिगोचर होता कि स्तब्ध रह जाने के सिवा मुझ से और कुछ करते-धरते न बनता था।

चौथे दिन बारात बिदा होने को थी। ट्रेन दिन को पौने दस बजे छूटती थी, अतः सबेरे सात बजे से ही दौड़ धूप शुरू हो गई। पकवानों से भरे बड़े-बड़े मटके, अनेकों ट्रंक, बर्तनों से भरे कई बोरे—और न जाने क्या-क्या, आ-आकर मँझले दादा के सामने सहन में ढेर के रूप में इकट्ठा होने लगा। कुछ देर तक तो मंझले दादा चुप बैठे देखते रहे; मगर जब इसके बाद रहा न गया तो हँस कर बोले—"आखिर आप लोगों का इरादा क्या

है ? यह इतना सामान लेकर हम लोग ट्रेन से कैसे जा सकें
समझ में नहीं आता।"

नज़दीक ही कमल कुमार खड़े थे, हँस कर बोले—"आ
आपकी शादी में भी तो इतना ही सामान दिया गया था—
वह गया था, वैसे ही यह भी चला जायगा। आप जितना
साथ ले सकें, ले जायँ। बाकी बैलगाड़ियों पर भेज
जायगा।"

इतने में सामान ले आने वालों में से एक ने मुझ से
चलने को कहा। मैं सुन कर भी चुप बैठा रहा, यह देख और
मन्तव्य को समझ कर कमल कुमार ने मँझले दादा से कह
"इन्हें घर जाने दीजिए, वहाँ अभी स्त्रियों की तरफ़ से होने
कई रिवाज बाक़ी पड़े हैं। वे भी हो जायँ, जिससे ट्रेन आने
कुछ पहले ही स्टेशन पहुँचना सम्भव हो सके।"

मँझले दादा ने कहा—"यह तो ठीक ही होगा। राजेन्द्र
जाओ।"

घर के आँगन में पहुँच कर पलँग पर जो शायद मेरे ही
बिछा था, बैठ गया। स्त्रियों ने आ आकर अपने रिवाज
किए, जिन्हें यहाँ लिखने की कोई ज़रूरत मुझे महसूस
होती—कारण, समाज में उनका प्रचलन इतने ज़ोरों से है
पाठकों के हृदय में उनके सम्बन्ध में कुछ जानने की जिज्ञ
जागृत ही नहीं हो सकती, अतः उन्हें लिखना व्यर्थ—अप्रासं
ही होगा।

सब के अन्त में चाँदनी एक लाल, चौड़े किनारे की स्वच्छ सादी धोती पहने—एक हाथ में मिठाई की तश्तरी और दूसरे में पानी का गिलास लिए आई। मैंने सिर उठा कर देखा, भीतर के शोकोच्छ्वास को प्राणपण से रोकने की चेष्टा उसके चेहरे पर स्पष्ट रूप से विद्यमान है, और मुख-मुद्रा इतनी प्रशान्त और गंभीर है कि शीघ्र ही उठने वाले शोक के हाहाकारी तूफ़ान का आभास आसानी से मिल रहा है—देख कर मैं देखता ही रह गया। सहसा चाँदनी ने चौंक कर कहा—"तुम तो बैठे मेरी ओर देख रहे हो। खा-पीकर चटपट फ़ुरसत पालो, तुम्हें ही देर हो रही है।"

जवाब में कुछ न कह कर खाने लगा; किन्तु खाने में तबियत न लग सकी। हृदयाकाश में उदासी के जो घने बादल किसी अचिन्त्य, अज्ञात दिशा से आ आकर एकत्रित हो रहे थे, उनसे अपने तन-मन पर मुझे एक ऐसे असहनीय भार का अनुभव होने लगा कि जिसे कम से कम उस समय उतार फेंकने की कोई भी युक्ति मेरे मस्तिष्क में न आ रही थी। फलतः उसी उधेड़-बुन में तश्तरी की मिठाई धीरे-धीरे गले के नीचे उतारने लगा।

हठात् चाँदनी ने कहा—"अब कब तक आओगे?" मैंने चौंक कर सिर उठाया "यह अभी से क्या बता सकता हूँ। अभी तो तुम्हारे ही घर में बैठा हूँ।"

"यह तो मैं भी देख रही हूँ। मगर पूछना यह है कि यहाँ से

जाकर फिर कभी यहाँ आने का खयाल मन में पैदा होग
नहीं ?"

"होगा क्यों नहीं।"

"यही तो पूछ रही हूँ—कब ?"

"यह तो समय और सुविधा की बात है, अथवा जब अ
लोग बुलावें।"

चाँदनी जवाब में कुछ न कह कर चुपचाप खड़ी रह गई।
कहा—"यहाँ का काम तो अब खत्म ही हो गया, अब
चलता हूँ।"

"जाने के पहले अपनी सास से तो मिल लो।"

"वे इस समय अपने काम में लगी हैं। मिलने-मिलाने
नतीजा रोने-धोने के सिवा कुछ न होगा, इससे अब
चलता हूँ।"

उठ कर खड़े होते ही चाँदनी ने अपनी भारी पलकें उठा क
साश्रु-दृष्टि से 'नमस्ते' किया। उत्तर में एक मूक अभिवादन क
चलने को उद्यत हुआ था कि पुरखिन मैया आ गईं। कुछ दे
उनकी संतान-प्रेम से तड़पती और करुणार्द्र अनुनय-विनय
बीच किसी तरह अपने को सँभाले रह कर चल दिया। चौखट
उस पार होते ही एक दबी हुई धीमी रोदन-ध्वनि के साथ अन
स्त्रियों के हाहाकारी क्रन्दन से चतुर्दिक वायुमंडल काँप उठा।

---

## सातवाँ परिच्छेद

सोहागरात के चौथे या पाँचवें दिन की बात है। मैंने अपनी स्त्री से कहा—" तुम तो जैसे बोलना ही नहीं जानतीं। देखो, तुम्हारी बहन किस तरह बातें करती हैं, जैसे अभी-अभी विलायत से बैरिस्टरी का डिप्लोमा लेकर लौटी हों। "

" कौन ? "

" चाँदनी। "

पत्नी ने तनिक मुसकरा कर कहा—" उनकी तो यह आदत ही है। "

" और तुम्हारी ? "

" मेरी क्या ? "

" तुम्हारी आदत मुँह पर मुहर-सी लगाए, आँखें झुकाए, चुपचाप बैठे रहने की है। "

पत्नी ने लज्जा-कुंठित स्वर में कहा, और क्या ? मुझे तो किसी के सामने बोलते बड़ी शरम लगती है। "

मैंने हाथ बढ़ा कर एक बारगी उसकी नाक पकड़ कर कहा—" किसी के सामने या मेरे सामने ? बोलो। "

" अफ़ओह ! छोड़ो-छोड़ो। "

" छोड़ूँगा बाद को, पहले मेरी बात का जवाब दो। "

" तुम्हारे सामने नहीं। "

" तो ठीक। " मैंने नाक छोड़ कर कहा—" अच्छा तो क
रात वाली वह अधूरी बात आज पूरी करो। "

" कौन सी ? "

" वही जब मिश्रा जी झाँसी में थे, तो तुम्हें और चाँदनी
अपने साथ लिवा ले गए थे। "

पत्नी ने क्षण भर विचार-मग्न रहने के बाद कहा—" मु
लिवा ले गए थे, छोटी जीजी ( चाँदनी ) तो वहीं थीं। उन्हें
वहाँ रहते कई बरस हो चुके थे। "

" ख़ैर, तुम्हें ही सही। क्या हुआ फिर ? "

" छोटी जीजी और जीजा जी में एक दिन बातों ही बातों
कहा-सुनी हो गई जिससे नाराज़ होकर छोटी जीजी घर चल
आई। तब से न जीजा जी ने कहा ही, और न छोटी जी
अपने मन से उनके साथ जाने को तैयार ही हुईं। "

" कहा-सुनी किस बात पर हुई ? "

" अक्सर मेम साहबा में और छोटी जीजी में लड़ाई हुआ
करती थी। एक दिन उस वाक्-युद्ध ने गहरा रंग पकड़ लिया
शाम को जीजा जी के आने पर छोटी जीजी ने उनसे घर भे
आने को कहा। जीजा जी ने जब समझाने-बुझाने का कोई अस
न देखा, तो दो-चार रोज़ में होने वाली बड़े दिन की छुट्टी में चल
को कहा। मगर छोटी जीजी इस पर राज़ी न हुईं और पड़ोस
एक खत्री के लड़के के साथ, जो उन दिनों वहीं ( झाँसी में
पढ़ता था, घर चली आईं। "

" तुम्हारे जीजाजी ने उन्हें एक ग़ैर आदमी के साथ जाने से मना नहीं किया ? "

" किया क्यों नहीं, बदमाश, बेहया तक बनाया । मगर छोटी जीजी मानीं ही नहीं । "

" फिर ? "

" जीजा जी ने उनका कुल सामान देकर कहा—" जाती हो तो जाओ ; मगर फिर कभी मेरे साथ आने-रहने का इरादा न करना । "

" तुम भी उन्हीं के साथ चली आईं ? "

" मुझे जीजा जी ने आने ही न दिया, हाँलाकि छोटी जीजी इसके लिए बड़ी ज़िद करती रहीं ।

" हूँ " कह के मैं चुप हो रहा । बड़ी देर तक कुछ न बोलने पर पत्नी ने कहा—" क्या सो गए ? "

" नहीं तो । "

" फिर बोलते क्यों नहीं ? "

"क्या बोलूँ ? "

पत्नी ने तनिक ठहर कर कहा—" इसी से तो मैं तुम से कुछ कहती-सुनती नहीं । अब यह बातें तुम छोटी जीजी से कहोगे, तो वह मुझ पर नाराज़ होंगी । "

विचार-सूत्र छिन्न-भिन्न हो गया । मैंने हँस कर कहा— " नाराज़ तो तब होंगी, जब मैं उनसे कुछ कहूँगा । तुम तो मुझे पहले से ही अविश्वासी समझने लगीं । मगर एक कहावत है—

'घर का भेदी लंका ढाहै।' तुम अगर न बतातीं, तो मुझे
बातें कैसे मालूम हो सकती थीं ?"

पत्नी ने करवट बदल, चिढ़े हुए स्वर में कहा—"रहने
तुम बड़े ख़राब आदमी हो। पहले जिद कर के पूछते थे, फि
बाद को खिल्ली उड़ाते हो।"

"यह खिल्ली उड़ाना नहीं, मज़ाक है, मेरी रानी !" पत
की दोनों बाहें पकड़, अपनी ओर खींचते हुए मैंने कहा।

वैवाहिक जीवन में प्रथम पदक्षेप करने वाली, नारी-कौश
से अनभिज्ञ, अपनी किशोरी पत्नी के मान-मोचन में कित
देर लगती है ?"

× × ×

गरमी की लम्बी छुट्टियाँ बीत जाने पर पत्नी अपने माय
चली गई और मैं कालेज में दाख़िल होकर पठन-पाठन में ल
गया। इसी बीच एक दिन मुझे एक पत्र मिला, जिसके लिफ़
पर की लिखावट देखते ही मैं कौतूहलाक्रान्त हो उठा। लिखाव
स्पष्ट रूप से किसी स्त्री की थी। मैंने सोचा, शायद चाँदनी ने प
भेजा होगा। कारण, पत्नी की सलज्ज प्रकृति को देखते उधर
ऐसी उम्मीद न थी। किन्तु लिफ़ाफ़ा फाड़ कर पत्र निकालते
पहले शब्द पर दृष्टि पड़ी—"प्राणेश्वर।" हृदय में सरस सु
कंपन का अनुभव कर, मज़मून छोड़ नीचे निगाह डाली—"अ
की दासी।"

अंतिम शब्द पर मन ही मन मुसकरा कर एक ही सा

में सारा पत्र पढ़ डाला। पत्र भर में काम की बातें सिर्फ़ दो ही तीन थीं—"मुझे यहाँ आए महीना भर हो गया इस बीच में न तो आप आए, और न पत्र ही भेजा। क्या मुझे इतनी जल्दी भूल गए ? बड़े छलिया हो। इस बार तुम्हें मेरे ही सिर की क़सम अगर छुट्टी मिलते ही न आए और पत्र पाते ही उसका जवाब न लिखा।" और इन्हीं बातों को कई बार घुमा-फिरा कर कुछ कम दो पेजों का वह पत्र समाप्त किया गया था। पत्र को एक बार, दो बार, तीन बार पढ़ने पर भी जब पढ़ने की लालसा बनी ही रही, तो मोड़ कर जेब में रख लिया, छुट्टी के बाद होस्टल के कमरे में निश्चिन्ततापूर्वक पढ़ने के लिए।

रात को सुनसान कमरे में कई बार पत्र का पारायण कर, परितृप्त हो जाने पर उसी भावावेश में जवाब लिखने बैठ गया। आध घंटे बाद एक अच्छा-खासा गद्य-काव्य मय पत्र तैयार कर लिफ़ाफ़े में बन्द करते-करते मुझे ध्यान आया कि अगर इसी लिफ़ाफ़े में एक पत्र चाँदनी के नाम भी रख दिया जाय, तो क्या हर्ज है। यह तो निरी कृतघ्नता ही होगी कि उसी घर में पत्र भेज कर चाँदनी की उपेक्षा कर दी जाय। यह पत्र छिपा तो रहेगा नहीं, विशेषतः चाँदनी से, उस दशा में वह मुझे क्या समझेगी ? हृदय-हीन, स्वार्थी।

अन्त में चाँदनी के नाम भी पत्र लिखना स्थिर कर सोचने लगा—आख़िर लिखूँ तो क्या ? सोचते-सोचते मस्तिष्क में एक बात आई, जो विशेष महत्व की न होने पर भी मेरे काम की थी।

महीना भर पहले पत्नी की विदाई के सिलसिले में चाँदनी क
जो पत्र मँझले दादा के नाम आया था, उसमें मेरा कहीं भ
ज़िक्र न था। यद्यपि यह बात किसी दृष्टि से भी असंगत न थ
मगर मुझे तो पत्र लिखने का एक आधार चाहिए था। उस
मामूली बात को असामान्य उलाहने के रूप में बदल कर प
लिख डाला और दोनों को एक ही लिफ़ाफ़े में बन्द कर दूसरे दि
सबेरे ही पोस्ट ऑफ़िस जा कर रजिस्टरी करा आया।

प्रतीक्षा करते-करते कई सप्ताह निकल गए; किन्तु जिस
लिए अत्यधिक आशान्वित और उत्कंठित था, उस चाँदनी
पत्र का कहीं पता न था। पत्र रजिस्टर्ड था, इसलिए खो जा
की तो गुँजाइश न थी—फिर क्या हुआ? कुछ समझ में
आया। मुझे तो आशा थी, चाँदनी मेरा पत्र पाते ही चटप
उसका जवाब लिख डालेगी। किन्तु महीने भर से कुछ ऊपर ह
बीत जाने पर मेरी वह आशा दुराशा में परिवर्तित हो गई
चाँदनी की इस कल्पनातीत उपेक्षा से चिढ़ कर मैं सोचने लगा
अगर पहले से यह मालूम होता, तो पत्र लिखता ही क्यों
विशेषतः अपने उलाहने पर मुझे बड़ी लज्जा लगने लगी। जो मेर
पत्र पाकर भी उसका जवाब न दे सकी, वह अन्य पत्र में मे
लिए कैसे कुछ लिख सकती थी?

किन्तु कुछ दिन बाद पत्नी का पत्र आने पर वास्तविक बात
मालूम हुई। पत्रोत्तर में इतना विलम्ब क्यों हुआ, यह बताते हुए
अपने मामूली मलेरिया-ज्वर का विस्तृत विवरण देकर पत्नी ने

लिखा था—और छोटी जीजी के नाम आपने जो पत्र भेजा था, वह मेरे ही पास रक्खा हुआ है। छोटी जीजी आज कल जीजा जी के साथ सहारनपुर में हैं। मेम साहबा सख़्त बीमार हैं।

पत्र पढ़ कर न जाने कैसा जी हो गया। कुछ देर पत्र हाथ में लिए अवसन्न, विचार-मग्न-सा बैठा रहा। इसके बाद हृदय में धीरे-धीरे उतर रहे घनीभूत विषाद को प्राणपण से दूर कर, अनुत्साहित-सा हवाख़ोरी को चल दिया।

इसके कुछ ही दिन बाद द्विरागमन के सिलसिले में मुझे ससुराल जाना पड़ा। गया तो, मगर एक कर्तव्य-सा समझ कर—पहले की-सी उत्सुकता और उल्लास न जाने कहाँ चला गया था।

शारदा उन दिनों अपने मायके में थी। रात को पुरखिन मैया जब मुझे खिलाने बैठीं, तो हृदय में सहसा एक मधुर स्मृति उठ आने से खाने के बजाय मुझे रो पड़ने की इच्छा होने लगी। पुरखिन मैया से पूछा—"मेम साहबा का अब क्या हाल है ?"

"उनका हाल कुछ अच्छा नहीं। परसों चाँदनी की चिट्ठी आई थी, जिसमें उसने लिखा था—"दोनों फेफड़े बिलकुल ख़राब हो गये हैं, डाक्टरों ने जवाब दे दिया है। देखना चाहो, तो दो-ही चार दिन में चली आओ—अब कुछ है नहीं।"

"जाओगी ?"

पुरखिन मैया ने धोती के छोर से अपने आँसू पोंछते-पों कहा—" अगर गौना बीच में न आ पड़ता, तो अब तक च गई होती अब इधर से फ़ुरसत मिलते ही जाऊँगी। "

मैंने कुछ देर चुपचाप खाते रहने के बाद पूछा—" बीम क्या थी ? "

" बीमारी की कुछ न पूछो ! लड़की पैदा हुई थी, उ सिलसिले में बुख़ार आने लगा। घर की अकेली थी, पथ्यापथ का विचार किया नहीं। धीरे-धीरे वह मामूली बुख़ार तपेदिक बदल गया। डाक्टरों ने जलवायु बदलने की सलाह दी थ सो भैया ( मिश्रजी ) यहीं लेकर आए थे। मगर हालत में को तबदीली न देख कर फिर सहारनपुर चले गए। अपने सा चाँदनी को भी ले गए हैं। "

" अब शायद वे कुछ दिनों वहीं रहेंगी ? "

" और क्या। भैया दिन भर अपनी नौकरी पर रहते है घर में न कोई देख-रेख करने वाला, न बीमार बिटिया के पा बैठने वाला। चाँदनी कम-से-कम उन लोगों को वक़्त पर रोट पानी तो देगी। अरे तुम तो उठे जा रहे हो भैया ! अभी खाय ही क्या........ "

"नहीं-नहीं काफ़ी खा चुका, अब बिलकुल गुँजाइश नहीं है।" कह कर मैं हाथ धोने लगा।

× × × ×

मेम साहबा की मृत्यु के कई महीने बाद एक दिन मँझले दादा ने आ कर कहा—"कुछ सुना राजेन्द्र ?"

"क्या ?" मैं जिज्ञासु दृष्टि से उनकी ओर देखता रह गया।

"कमल बाबू अपनी बहन चाँदनी का विधवा-विवाह करने जा रहे हैं।

"किस से ?"

"मिश्रा जी के साथ।"

"कब ?"

"इसी महीने में। दो-एक दिन में निमन्त्रण आएगा; किन्तु हमारे घर से किसी का भी आना जाना न होगा, यह निश्चय समझो। बल्कि आज से हम-तुम दोनों को ससुराल को अन्तिम प्रणाम कर देना होगा। विधवा-विवाह करें, चाहे विधुर विवाह, हम लोगों को अब उनसे किसी तरह का वास्ता नहीं रखना है।"

हठात् मेरे वेदना-विवर्ण मुख पर दृष्टि डाल, मँझले दादा ने चौंक कर कहा—"नहीं—नहीं, अगर तुम ससुराल नहीं छोड़ना चाहते तो न सही, मैं तुम्हें इसके लिए मजबूर नहीं कर रहा हूँ। तुम अगर जाना चाहो, तो मज़े में जा सकते हो। इसके लिए मैं तुमसे तनिक भी अप्रसन्न न हूँगा।"

"कैसी बातें करते हैं आप ! मैंने आज तक कभी आपकी

किसी भी आज्ञा का उल्लंघन किया है ? ससुराल क्या, कहने से मैं संसार तक को छोड़ सकता हूँ। ”

“ बस, यही मैं चाहता था। ”

मँझले दादा चले गए। मैं उसी जगह स्तब्ध वि बैठा रह गया।